॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२४

श्रीविष्णुशर्मविरचितं

पञ्चतन्त्रम्

(अपरीक्षितकारकं नाम पञ्चमं तन्त्रम्)

'वीणा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

याख्याकार

ालाल जोशी



चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२

वाराणसी (भारत)

श्रीविष्णुशर्मविरचितं

पञ्चतन्त्रम्

(अपरीक्षितकारकं नाम पञ्चमं तन्त्रम्)

'वीणा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार

कन्हैयालाल जोशी



चौखम्भा ओरियन्टालिया

वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक
चौखम्भा ओरियन्टालिया
प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक-विक्रेता
पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२
गोकुल भवन के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१ (भारत)
टेलीफोन : ६३०२२ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव
शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर
दिल्ली–११०००७

प्रथम संस्करण १९७७
मूल्य रु० २–५०

अन्यतम प्राप्तिस्थान :—
चौखम्भा विश्वभारती
चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी
फोन : ६५४४४

मुद्रक—विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
फोन : ५२९३९

प्रभु राज हिरम[illegible]

विषय-सूची



प्राक्कथन

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥
(मित्रलाभः)

अर्थात्—बुद्धिमानों का समय काव्य-शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन रूप मनो-विनोद में व्यतीत होता है और शास्त्रविमुख हुए मूर्ख लोग निद्रा, कलह और व्यसनों में ही अपना समय व्यतीत करते हैं।

अत एव नीतिशास्त्र का अध्ययन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए अपेक्षित है, तथापि शास्त्र का अध्ययन विद्वान् के लिए भी प्रायः कष्टप्रद होता है विशेषतः बाल्यावस्था में। और चूँकि बाल्यावस्था जीवन की मूलभित्ति है, अतः उस काल में नैतिक सिद्धान्तों का ज्ञान सम्पूर्ण जीवन को सुदृढ बनाता है। इस लोक में दो प्रकार की विद्याएँ प्रसिद्ध हैं—शस्त्रविद्या और शास्त्र-विद्या। उसमें प्रथम का वृद्धावस्था में ह्रास हो जाता है और वह हँसी को प्राप्त कराती है परन्तु शास्त्रविद्या जीवन में सर्वदा ही उन्नति एवं सम्मान प्राप्त कराती है—

विद्या शस्त्रं च शास्त्रं च द्वे विद्ये प्रतिपत्तये।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाद्रियते सदा॥
(हितोपदेश)

संस्कृत का आख्यान साहित्य नीतिकथा और लोककथाओं पर आधारित है। इनमें गद्य-पद्यमय शैली में रोचक ढंग से कथाओं का उपक्रम किया जाता है जिससे वे अत्यधिक मनोरञ्जक बन जाती हैं। इन कथाओं के माध्यम से जीवन की प्रत्येक व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की जाती है। राजनीति, सदाचार आदि व्यावहारिक विषयों के साथ साथ आध्यात्मिक विषयों का भी उपदेश किया जाता है। इसमें प्रायः पात्र ऐतिहासिक आधार पर न होकर काल्पनिक ही रहते हैं।

पञ्चतन्त्र संस्कृत आख्यानक ग्रन्थों में अग्रगण्य है। इसकी अधिक लोकप्रियता ही इसके महत्त्व को स्पष्ट कर देती है। पञ्चतन्त्र के अतिरिक्त कथासरित्सागर, बृहत्कथामंजरी आदि भी सुप्रसिद्ध आख्यानक साहित्य हैं। परन्तु जो प्रसिद्धि पञ्चतन्त्र को प्राप्त हो सकी वह किसी अन्य को नहीं और न केवल भारतवर्ष में ही अपितु विश्व के सम्पूर्ण साहित्य में यह सर्वाधिक प्रचलित एवं मान्य कथा ग्रन्थ हुआ। इतना ही नहीं विश्व की प्रायः सभी सभ्य भाषाओं के अन्तर्गत इसका अनुवाद भी हो चुका है जिनमें अरबी, यूनानी, फ्रैंच, जर्मनी आदि के अनूदित संस्करण अत्यधिक लोकप्रिय रहे हैं।

इसका प्रबलतम कारण यह है कि यह नीतिशास्त्र जैसे गूढ एवं जटिल विषय को सरल शैली में प्रस्तुत करता है जिससे यह शीघ्र ही बोधगम्य हो जाता है। इसी कारण प्रायः सभी माध्यमिक व विश्वविद्यालयीय पाठ्यक्रम में इसको रखा गया है। इसके निर्माण का भी एक मात्र उद्देश्य नीतिशास्त्र में प्रवृत्त सुकुमार बुद्धिवाले राजकुमारों को कथा के बहाने ज्ञान कराना ही अपेक्षित था—

अथासौ राजा तां ब्राह्मणस्यासम्भाव्यां प्रतिज्ञां श्रुत्वा ससचिवः प्रहृष्टो विस्मयान्वितः तस्मै सादरं तान् कुमारान् समर्प्य परां निर्वृतिमाजगाम। (पंचतन्त्र कथामुख)

अनेक अद्भुत कथाओं को पाँचतन्त्रों के अन्तर्गत विभक्त किया गया है, इसलिए इसका नाम भी पञ्चतन्त्र है। **'पञ्चानां तन्त्रानां समाहारः अथवा पञ्च तन्त्राणि नीतिसिद्धान्ता यत्र तत्तथोक्तम्'**—इस विग्रह के अनुसार तन्त्र का अर्थ नीतिशास्त्र है। तन्त्र शब्द का व्यवहार—अविच्छिन्न वंश परम्परा के अर्थ में भी होता है अतः उसके आधार पर कथाओं की प्रवाहबद्धता—ऐसा अर्थ भी किया जा सकता है, परन्तु यहाँ कथामुख के प्रारम्भ में **'तन्त्रैः पञ्चभिरेतच्चकार'** लिखकर कथाओं के पाँच अनुभागों की ओर संकेत है। वे पाँच अनुभाग (तन्त्र) निम्नलिखित हैं :—

१. मित्रभेदः, २. मित्रसम्प्राप्तिः ३. काकोलूकीय ४. लब्धप्रणाश, ५. अपरीक्षितकारक।

इस पञ्चतन्त्र की रचना कब हुई और किसने की? यह विषय अभी भी प्रायः जिज्ञास्य ही बना हुआ है। अनेक तथ्यों के आधार पर इसका रचना समय संस्कृतज्ञों ने गुप्तकाल ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है और कौटिल्य के अर्थशास्त्र से इसे प्रभावित माना है। विद्वानों का मत है कि आज भी पञ्चतन्त्र अपने मूलरूप में प्राप्त नहीं है। इसी के आधार पर आगे हितोपदेश की रचना भी हुई है। हितोपदेश के प्रारम्भ में ही कहा गया है—

पञ्चतन्त्रात्तथान्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते।

इसी प्रकार ग्रन्थ के प्रणेता के विषय में भी अनेक प्रकार की शङ्काओं को स्थान प्राप्त है तथापि अद्यावधि प्राप्त पञ्चतन्त्र की सभी प्रतियों में प्रारम्भ में विष्णुशर्मा का नाम आता है जिससे यह पञ्चतन्त्र विष्णुशर्म-विरचित है—ऐसा मान्य हुआ है। पञ्चतन्त्र के प्रारम्भ में कथामुख के अन्तर्गत पद्य एवं गद्य दोनों में ही विष्णुशर्मा के नाम का उल्लेख है जैसा कि—

सकलार्थशास्त्रसारं जगति समालोक्य विष्णुशर्मेदम्।
तन्त्रैः पञ्चभिरेतच्चकार सुमनोहरं शास्त्रम्॥

विष्णुशर्मणापि तानादाय तदर्थं मित्रभेद-मित्रसम्प्राप्ति-काकोलूकीय-लब्धप्रणाश-अपरीक्षितकारकाणि चेति पञ्च तन्त्राणि रचयित्वा पठितास्ते राजपुत्राः।

विष्णुशर्मा को अपनी विद्वत्ता पर पूर्ण विश्वास था अत एव राजपुत्रों को नीतिविषयक ज्ञान कराने में छः मास की अवधि के लिए दृढ़प्रतिज्ञा की—

पुनरेतान् तव पुत्रान् मासषट्केन यदि नीतिशास्त्रज्ञान् न करोमि ततः स्वनामत्यागं करोमि।

अपरीक्षितकारक

पञ्चतन्त्र का अन्तिम पञ्चम अनुभाग अपरीक्षित कारक नाम से प्रसिद्ध है। इसके नामकरण का मुख्यतः अभिप्राय यही है कि इसमें उन्हीं कथाओं को स्थान दिया गया है, जिनमें व्यक्ति को यह ज्ञान होता है कि किसी भी कार्य

में बिना परीक्षा किये हुए प्रवृत्त नहीं होना चाहिए अर्थात् कार्यारम्भ से पूर्व हमें उसके शुभाशुभ फल पर भलीभाँति विचार कर लेना चाहिये। इस प्रकार व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस प्रकरण का अत्यधिक महत्व है। इसमें कुल मिलाकर १२ कथाओं का संग्रह है। इस संस्करण में परीक्षावर्जित कथाओं को स्थान नहीं दिया गया है। परन्तु कथा के मूल की परम्परा में किसी प्रकार की वाधा उपस्थित नहीं होती। इसके अतिरिक्त 'त्रिस्तनी राजकुमारी' आदि अश्लीलांश कथाओं के विषय में यह भी आशङ्काएँ वनी हुई हैं कि सम्भवतः ये बाद में अन्य व्यक्ति द्वारा जोड़ दी गई हों। अस्तु, हम प्रस्तुत संस्करण के अनुसार निम्नलिखित कथाओं के सार को नीचे स्पष्ट करते हैं—

(१) क्षपणक कथा—बिना विचारे कार्य करनेवाला मूर्ख नापित जिस दण्ड का भागी हुआ—इसी कथा का यहाँ वर्णन है।

कोई मणिभद्र नामक शेठ भाग्यवश निर्धनता को प्राप्त हुआ था। उसकी दरिद्रता दूर करने के लिए स्वप्न में उसे पद्मनिधि ने बौद्धसंन्यासी के वेश में दर्शन दिया और कहा कि प्रातः काल में तुम्हारे घर आऊँगा, तुम मुझ पर लाठी से प्रहार करना तो मैं तुम्हारे लिए अक्षय निधि वन जाऊँगा। प्रातः काल मणिभद्र की पत्नी ने किसी नाई को घर पर बुलवाया था, उसने इस कृत्य को देखकर स्वयं भी वैसे ही करने के लिए सोचा और दूसरे दिन वहुत से बौद्ध संन्यासियों को भोजन के लिए आमन्त्रित किया और उन्हें लाठी से मारना शुरू कर दिया जिससे अनेक बौद्ध संन्यासी वहीं तड़प-तड़पकर मर गये। नापित को इस दुष्कृत्य के लिए शूली पर चढ़ा दिया गया।

(२) ब्राह्मणी नकुल कथा—देवशर्मा नामक ब्राह्मण की पत्नी ने अपने पुत्र के साथ ही एक मृत नकुली के पुत्र का भी लालन-पालन किया। परन्तु, नकुल के जातिस्वभाव को जानकर वह उस पर विश्वास नहीं करती थी। एक दिन वह ब्राह्मण को देखभाल के लिए कहकर पानी भरने के लिए चली गयी, परन्तु ब्राह्मण भी भिक्षा के लिए बाहर चला गया। उसी समय एक सर्प निकला जो ब्राह्मणी के पुत्र की ओर जा रहा था। यह देखकर भाई को बचाने के लिए नकुल उस पर झपट पड़ा और उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

नकुल अपने इस साहसपूर्ण कार्य को बताने के लिए शीघ्रतावश ब्राह्मणी की ओर चला। मार्ग में ब्राह्मणी ने देखा कि उसका मुँख खून से लथपथ है और उसने पुत्र के मरने की आशंका से पानी का घड़ा तुरन्त उस पर दे मारा। परन्तु घर आकर वास्तविक स्थिति का ज्ञान होने पर वह अत्यन्त विलाप करने लगी। इस प्रकार यह कार्य भी उसके द्वारा अपरीक्षित ही था।

(३) लोभाविष्ट-चक्रधर कथा—चार ब्राह्मण मित्र अपनी दरिद्रता के कारण घर से निकलकर उज्जयिनी गये और वहाँ भैरवानन्द नाम के योगी से चार सिद्धवटी प्राप्तकर हिमालय की ओर चल पड़े। जैसे-जैसे वह सिद्ध-वटी गिरती गयी, वहाँ-वहाँ क्रमशः तांबे की, चांदी की और फिर सोने की भूमि दिखाई पड़ी। उन मित्रों में चक्रधर लोभ से आविष्ट होकर सब को छोड़कर रत्नलोभ के कारण आगे बढ़ गया। तब वह रास्ता भूलकर इधर-उधर घूमने लगा और चक्र से कष्ट भोगनेवाले एक पुरुष को देखा। चक्रधर ने उससे चक्र के विषय में पूछा तो वह चक्र स्वयं उसके मस्तक पर चढ़ गया और कष्ट भोगने लगा। इस प्रकार लालच में आकर मतिभ्रष्ट होकर वह कष्ट का भागी हुआ।

(४) सिंहकारकमूर्खब्राह्मण कथा—इसमें व्यावहारिक ज्ञान से शून्य केवल शास्त्रपारङ्गत ब्राह्मणों के विनाश की कथा है। उन्होंने अपने विद्या बल से मरे हुए सिंह की हड्डियों को एकत्रित करके जीवित कर दिया और सिंह उन सबको खा गया। उनमें केवल एक बुद्धिमान था, वह वृक्ष पर चढ़कर जीवित बच गया।

(५) मूर्खपण्डित कथा—इसके अन्तर्गत भी ऐसे ही ब्राह्मणों की कथा है जो केवल शास्त्र के अर्थमात्र को जानते थे, उनका व्यवहार में प्रयोग करना नहीं जानते थे। पण्डित होकर जब वे निकले तो रास्ते में दो मार्ग आये तब उन्होंने शास्त्र के अनुकूल विचार करना प्रारम्भ किया और "महाजन जिस रास्ते से जावे उसी रास्ते से जाना चाहिए" ऐसा विचार कर श्मशान की ओर जाते हुए लोगों के साथ ही चल पड़े। उसी प्रकार रास्ते में गधा मिलने पर उसे अपना बन्धु मानने लगे और ऊँट मिलने पर 'धर्मस्य

त्वरिता गति' के अनुसार उसे धर्म समझकर गधे के साथ उसे बाँध दिया। आगे जाकर नदी में तैरते हुए पत्ते को उनमें से एक देखकर शास्त्र के वाक्यार्थ मात्र को स्मरणकर उस पर कूद पड़ा। तब दूसरे ने उसे डूबते हुए देखकर सोचा कि उसका पूर्ण विनाश हो जाएगा इसलिए उसका आधा भाग बचाने के लिए उसका शिर काट दिया। अनन्तर एक गाँव में जब वे भोजन के लिए आमन्त्रित किये गये तो उसमें भी वे दोष दृष्टि से भोजन त्यागकर भूखे ही खड़े हो गये और इस प्रकार वे सभी हँसी के पात्र हुए।

(६) **मत्स्य-मण्डूक कथा**—किसी तालाब में शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि नामक दो मछलियाँ और एकबुद्धि नामक मण्डूक रहता था। उनमें मण्डूक ही एकबुद्धि अर्थात् निश्चित बुद्धिवाला था। एक दिन धीवरों की नजर उस तालाब पर पड़ी तो उन्होंने मछलियों को पकड़ना चाहा। यह देखकर मण्डूक ने वहाँ से भाग जाना ही उचित समझा परन्तु शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि अपनी बुद्धि के घमण्ड में मारे गये।

(७) **रासभ-शृगाल कथा**—रासभ और शृगाल दोनों मित्र थे। वे खेत में घुस कर चुपचाप सब खा लिया करते थे। एक दिन रासभ ने अपनी गीतकला को दिखाने के लिए खेत में ही अपना राग अलापना शुरू कर दिया। उस समय शृगाल खेत के मालिक के जग जाने के भय से बाहर खड़ा हो गया और रासभ की दुर्बुद्धि का फल देखता रहा।

(८) **मन्थरकौलिक कथा**—इसमें मन्थर नामक जूलाहे की कथा है जिसको एक यक्ष सिद्ध हुआ था परन्तु उसमें स्वयं विचारने की शक्ति नहीं थी और उसने अपने मित्र की बात भी न सुनी और अपनी पत्नी के ऊपर ही विश्वास करके यक्ष से अपने चार हाथ और दो शिर माँग लिये जिससे गाँव के लोगों ने उसे राक्षस जानकर मार डाला।

(९) **सोमशर्मपिता कथा**—इसमें एक ऐसे ब्राह्मण की कथा है जो बिना विचारे भविष्य की चिन्ताओं में डूब जाता है। यह भिक्षा से बचे सत्तू को एक घड़े में बचाकर रखता है और रात्रि में सोते हुए अकाल पड़ने की कल्पना करता है जिससे उसको सत्तू बेचकर बहुत सा धन मिल जाय। वा

उससे बकरियों के जोड़े खरीदने को सोचता है, उससे भैंसे और फिर घोड़े खरीदने का विचार करता है। वह धनी होकर रूपवती पत्नी और उससे सोमशर्मा नामक पुत्र की कल्पना करता है। वह सोचता है कि पुत्र को अपने पास बुलाऊँगा और पत्नी पर गुस्सा करूँगा। वह घर के काम में लगी रहने से मेरी बात को टाल देगी तो मैं उसे लात मार दूँगा। वह सचमुच ही अपनी लात चला बैठता है और सत्तू का घड़ा फूटकर उस पर गिर पड़ता है।

(१०) चन्द्रभूपति कथा—इस कथा में चन्द्र नामक राजा और बानर परिवार दोनों ही लालच में आकर नष्ट हो जाते हैं। बन्दर उस राजा के यहाँ खाने-पीने के लोभ से रहते थे परन्तु एक बहुत ऊनवाला भेडिया रसोइघर में घुसकर सब खा जाया करता था, और रसोइये जो चीज हाथ लगती उसे मार देते थे। उसे सोचकर बुद्धिमान वृद्धवानर ने सोचा कि ऐसा होने पर तो कभी कोई चीज न रहे तो रसोइये जलती लकड़ी से ही उसे मार देंगे। तब भेडिया अपनी आग बुझाने के लिए घुडशाला में घुस जायगा और वह घास से भरी घुडशाला भी जल उठेगी। तब घोड़े भी जलने लगेंगे और राजा घोड़ों की दवाई के लिए बन्दरों को मरवा डालेगा क्योंकि घोड़े की जलन बन्दर की चरबी से ठीक होती है। परन्तु इस बात को किसी भी बन्दर ने माना नहीं और वे वहीं रहे। वृद्धवानर उन्हें छोड़कर चला गया और वही घटना घटी। पुनः वृद्धवानर ने अपने कुल के नाश का बदला लेने के लिए एक राक्षस से रत्नमाला प्राप्त की जिसकी लालच में आकर राजा ने अपने परिवार को राक्षस के मुँह में भेज दिया।

(११) विकाल-वानर कथा—यह कथा विकाल नामक राक्षस, वानर और एक घोड़े के चोर से सम्बन्धित है। तीनों परस्पर एक दूसरे से भयभीत होकर जीवन की रक्षा पाते हैं।

(१२) भारुण्ड पक्षी कथा—भारुण्ड नामक पक्षी ऐसा था जिसका पेट तो एक ही था परन्तु गर्दन अलग-अलग थी। दोनों जो कुछ खाते थे उस एक ही पेट में जाता था परन्तु स्वाद के अलग-अलग अनुभव के लिए दोनों में वैमनस्य पैदा हो गया जिससे वे दोनों ही नष्ट हो गये।

(१३) ब्रह्मदत्त-कर्कटक कथा—इस कथा का तात्पर्य है कि मार्ग में जाते हुए किसी को भी अपना सहायक बना लेना चाहिए। ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण जब गाँव जाने के लिये निकला था तो माता के द्वारा दिया हुआ केंकड़ा ही उसका सहायक बन गया। उसके कारण निद्रायुक्त उस ब्राह्मण की सर्प से रक्षा हुई।

इस प्रकार पञ्चतन्त्र के इस अपरीक्षित कारक प्रकरण की समाप्ति होती है। इसमें मुख्यतः लोभाविष्ट चक्रधर की कथा है जिसकी परम्परा में अन्य कथाओं का उद्गम हुआ है। ये सभी कथाएं सुमति बालकों को मनोविनोद पूर्वक नीति का ज्ञान कराने में सक्षम हैं। इसके अन्तर्गत आये हुए श्लोक अतीव शिक्षाप्रद हैं अतएव स्मरणीय हैं।

अक्षय तृतीया
२१-५-७७

कन्हैयालाल जोशी

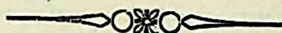
॥ श्रीः ॥

श्रीविष्णुशर्मविरचितं

पञ्चतन्त्रम्

(अपरीक्षितकारकं नाम पञ्चमं तन्त्रम्)

'वीणा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्



१. क्षपणक-कथा

अथेदमारभ्यतेऽपरीक्षितकारकं नाम पञ्चमं तन्त्रं, यस्यायमादिमः श्लोकः—

कुदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम् ।
तन्नरेण न कर्तव्यं नापितेनात्र यत्कृतम् ॥ १ ॥

अथेति । अत्र अथ शब्द आनन्तर्यार्थः, प्रकरणादौ प्रयोकजत्वेन मङ्गलार्थश्च । अपरीक्षितकारकं नाम = न परीक्षितं अपरीक्षितम् = सदसद्बुद्ध्याऽविचारितम्, करोतीति कारकः, अपरीक्षितानां कारकाः यस्मिन् तन्त्रे तत् अपरीक्षितकारकम्, तत्संज्ञकमित्यर्थः । पञ्चमं तन्त्रम् = पञ्चतन्त्राख्यस्येदमन्तिमं प्रकरणम् । आरभ्यते = प्रारभ्यते । यस्य = तन्त्रस्य अयं = एषः, कुदृष्टमित्यादि । आदिमः = प्रथमः, श्लोकः—

अन्वयः—अत्र, नापितेन, कुदृष्टं, कुपरिज्ञातं, कुश्रुतं, कुपरीक्षितं यत् कृतं तन्नरेण न कर्तव्यम् ॥ १ ॥

व्याख्या—अत्र = अस्मिन् प्रकरणे, नापितेन = क्षुरिणा, कुदृष्टं = विचारबुद्ध्यानालोचितं, कुपरिज्ञातम् = अनुचितरीत्या परितः समन्ततो विदितं, कुश्रुतं = सम्यगनाकर्णितं, कुपरीक्षितम् = असाधु परितो वीक्षितं, दुर्विचारेण स्थिरीकृतमिति यावत् । यत् = यादृशं कर्म, कृतं = विहितम्, तत् = तादृशं कर्म, नरेण = मनुष्येण, न कर्तव्यम् = न कार्यम् ॥ १ ॥

अब मैं (विष्णु शर्मा) पञ्चतन्त्र के अपरीक्षितकारक नामक इस पञ्चम तन्त्र को प्रारम्भ करता हूँ, जिसका यह प्रथम श्लोक है—

अच्छी प्रकार न देखा गया, अच्छी प्रकार न जाना गया, ध्यानपूर्वक न सुना गया, एवं सम्यक् प्रकार से परीक्षा न किया गया कार्य मनुष्य को न करना चाहिये, जिसको यहाँ मूर्ख नाई ने किया था ॥ १ ॥

तद्यथाऽनुश्रूयते—"अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे पाटलिपुत्रं नाम नगरम्। तत्र मणिभद्रो नाम श्रेष्ठी प्रतिवसति स्म। तस्य च धर्मार्थकाममोक्षकर्माणि कुर्वतो विधिवशाद्धनक्षयः सञ्जातः। ततो विभवक्षयादपमानपरम्परया परं विषादं गतः। अथाऽन्यदा रात्रौ सुप्तश्चिन्तितवान्—"अहो, धिगियं दरिद्रता।"

उक्तं च—

शीलं शौचं क्षान्तिर्दाक्षिण्यं मधुरता कुले जन्म।
न विराजन्ति हि सर्वे, वित्तविहीनस्य पुरुषस्य ॥ २ ॥

तद्यथेति। तद् = नापितस्य वृत्तम्, यथा = येन रूपेण, अनुश्रूयते = परम्परया श्रूयते, अस्ति = वर्तते, दाक्षिणात्ये = दक्षिणदिशि स्थिते, जनपदे = देशे, पाटलिपुत्रं नाम = पाटलिपुत्र नामकं नगरम्, तत्र = तस्मिन् पाटलिपुत्रनगरे, मणिभद्रनाम = मणिभद्राख्यः, श्रेष्ठी = धनिकः, प्रतिवसति स्म = उवास, तस्य = मणिभद्रस्य धर्मार्थकाममोक्षकर्माणि = धर्मादिचतुर्वर्गसाधकानि कार्याणि, कुर्वतः = विदधतः, विधिवशात् = भाग्यविपर्ययात्, धनक्षयः = वित्तनाशः, सञ्जातः = बभूव। ततः = पश्चात्, विभवक्षयात् = वित्तनाशात्, अपमानपरम्परया = बहुविधतिरस्कारेण, परम् = अत्यन्तं, विषादं = दुःखं, गतः = प्राप्तः, अथ = कियद्दिनान्तरम्, अन्यदा = अन्यस्मिन् काले, सुप्तः = निद्रामनुगतः, चिन्तितवान् = विचारितवान्, धिगियं दरिद्रता = ईदृशी मे विपन्नावस्था सञ्जाता, अतो धिगिति भावः। उक्तञ्च = कथितञ्च।

अन्वयः—शीलं, शौचं, क्षान्ति, दाक्षिण्यं, मधुरता, कुले जन्म, सर्वे हि वित्तविहीनस्य, पुरुषस्य, न विराजन्ति ॥ २ ॥

व्याख्या—शीलम् = स्वभावः, सदाचरणम् वा, शौचम् = पवित्रता, क्षान्तिः = क्षमा, दाक्षिण्यं = उदारता, मधुरता = प्रियभाषित्वं, कुले = सत्कुले, जन्म = उत्पत्तिः, सर्वे = समस्ताः, गुणारित्यर्थः। वित्तहीनस्य = धनरहितस्य, पुरुषस्य, न विराजन्ति = न शोभन्ते दयादाक्षिण्यादयो गुणाः दारिद्र्ये पुरुषस्योत्कर्षकाः न भवन्तीति भावः ॥ २ ॥

जैसा कि सुना जाता है, दक्षिण के किसी राज्य में पाटलिपुत्र नाम का ए[क] नगर था। उसमें मणिभद्र नाम का एक सेठ रहता था। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष [के] लिये विहित सभी कर्मों को करते हुए दैवयोग से उसका सम्पूर्ण धन नष्ट हो गया। तब ध[न] के नष्ट हो जाने पर प्रतिदिन के अपमान से वह बहुत दुःखी रहा करता था। तदनन्त[र] एक दिन रात्रि में वह सोते समय दुःखी होकर सोचने लगा—"अहो, मेरी इस दरिद्रत[ा] को धिक्कार है।"

शील, पवित्रता, सहनशीलता, उदारता, मधुरता और अच्छे कुल में जन्म—[ये] सब धनहीन पुरुष को कुछ भी शोभा नहीं देते है ॥ २ ॥

मानो वा दर्पो वा विज्ञानं विभ्रमः सुबुद्धिर्वा ।
सर्वं प्रणश्यति समं, वित्तविहीनो यदा पुरुषः ॥ ३ ॥

प्रतिदिवसं याति लयं वसन्तवाताहतेव शिशिरश्रीः ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामपि कुटुम्बभरचिन्तया सततम् ॥ ४ ॥

नश्यति विपुलमतेरपि बुद्धिः पुरुषस्य मन्दविभवस्य ।
घृतलवणतैलतण्डुलवस्त्रेन्धनचिन्तया सततम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—मानः, वा दर्पः, वा विज्ञानं, विभ्रमः, सुबुद्धिः वा, यदा पुरुषः, वित्तविहीनः (भवति) समं, सर्वं, प्रणश्यति ॥ ३ ॥

व्याख्या—मानः = सत्कारः, दर्पः = अभिमानः, विज्ञानम् = विशिष्टं ज्ञानं शिल्पज्ञानं वा, विभ्रमः = विलासः, सुबुद्धिः = सद्बुद्धिः, वित्तविहीनः = धनरहितः, यदा = यस्मिन् काले, (भवति) तदा, समम् = युगपदेव, सर्वम् = एतत्, प्रणश्यति = विनाशं प्राप्नोति ॥ ३ ॥

अन्वयः—बुद्धिमतां, अपि, बुद्धिः, कुटुम्बभरचिन्तया, वसन्तवाताहता, शिशिरश्रीः, इव, प्रतिदिवसं लयं याति ॥ ४ ॥

व्याख्या—दारिद्र्यलाभे सति, बुद्धिमतां = प्रज्ञावतामपि, बुद्धिः = प्रज्ञा, सततं = निरन्तरं, कुटुम्बभरचिन्तया = परिवारपोषणचिन्तया, वसन्तवाताहताः = वसन्तवातेन वसन्तकालीनपवनेन आहताः = ताडिता, विनाशितेत्यर्थः । शिशिरश्रीरिव = शिशिरशोभा इव, प्रतिदिवसं = प्रतिदिनं, लयं याति = विनाशं गच्छति ॥ ४ ॥

अन्वयः—विपुलमतेरपि, मन्दविभवस्य, पुरुषस्य, बुद्धिः, सततं, घृत-लवण-तैल-तण्डुल-वस्त्रेन्धनचिन्तया, नश्यति ॥ ५ ॥

व्याख्या—विपुलमतेरपि = प्रबलबुद्धेरपि, मन्दविभवस्य = मन्दः = क्षीणः, विभवः = धनं यस्य, धनहीनस्येत्यर्थः । बुद्धिः = मतिः, सततं = निरन्तरं, घृतलवणतैलतण्डुल-वस्त्र-इन्धन-चिन्तया = घृतस्य, लवणस्य, तैलस्य, तण्डुलस्य, वस्त्रस्य, इन्धनस्य, च चिन्तनेन नश्यति = नष्टं भवति ॥ ५ ॥

जब पुरुष धनहीन होता है (तब) सत्कार, अभिमान, विज्ञान, विलास तथा अच्छी बुद्धि—ये सब एक साथ ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

वसन्त वायु से पहले आहत हुई शिशिर ऋतु की शोभा की भाँति—कुटुम्ब के पालन की चिन्ता से बुद्धिमानों की बुद्धि प्रतिदिन क्षीण होती जाती है ॥ ४ ॥

जिसका धन नष्ट हो गया है ऐसे महान् बुद्धि सम्पन्न पुरुष की भी बुद्धि निरन्तर घी, नमक, तेल, चावल, वस्त्र तथा इन्धन आदि परिवार के भरण योग्य वस्तुओं को जुटाने की चिन्ता से विनष्ट हो जाती है ॥ ५ ॥

गगनमिव नष्टतारं, शुष्कमिव सरः, श्मशानमिव रौद्रम् ।
प्रियदर्शनमपि रूक्षं, भवति गृहं धनविहीनस्य ॥ ६ ॥
न विभाव्यन्ते लघवो वित्तविहीनाः पुरोऽपि निवसन्तः ।
सततं जातविनष्टाः पयसामिव बुद्बुदाः पयसि ॥ ७ ॥
सुकुलं कुशलं, सुजनं विहाय, कुलकुशलशीलविकलेऽपि ।
आढ्ये, कल्पतराविव नित्यं रज्यन्ति जननिवहाः ॥ ८ ॥

अन्वयः—प्रियदर्शनमपि, धनहीनस्य, गृहं, नष्टतारं, गगनम् इव, शुष्कं सरः इव, रौद्रं श्मशानम् इव, रूक्षं भवति ॥ ६ ॥

व्याख्या—प्रियदर्शनमपि = चारुदर्शनमपि, धनहीनस्य = दरिद्रस्य, गृहम् = भवनम्, नष्टतारम् = लुप्तनक्षत्रम्, गगनमिव = आकाशमिव, शुष्कम्=जलरहितं, सरः = जलाशयमिव, रौद्रम् = भयानकम्, श्मशानमिव = प्रेतभूमिरिव, रूक्षम् = दर्शने अप्रियतरं भवति ॥ ६ ॥

अन्वयः—वित्तविहीनाः, लघवः, पुरः, निवसन्तोऽपि, पयसि, सततं, जातविनष्टाः पयसां बुद्बुदा इव, न विभाव्यन्ते ॥ ७ ॥

व्याख्या—वित्तविहीनाः = धनहीनाः, अत एव लघवः = हेयाः जनाः, पुरः = अग्रे समीपं, निवसन्तोऽपि = विद्यमाना अपि, सततं = निरन्तरं, पयसि = जले, जातविनष्टाः = उत्पन्ना एव विनाशं गताः, पयसां = जलानां, बुद्बुदाः = जलस्फोटा इव, न विभाव्यन्ते = न दृश्यन्ते, निकटस्थमपि निर्धनं न कोऽपि पश्यतीति भावः ॥ ७ ॥

अन्वयः—जननिवहाः, सुकुलं, कुशलं, सुजनं, विहाय, कुलकुशलशीलविकलेऽपि आढ्ये कल्पतरौ इव नित्यं रज्यन्ति ॥ ८ ॥

व्याख्या—जननिवहाः = लोकानां संघाः, सुकुलं = श्रेष्ठकुलोत्पन्नं, कुशलं = प्रवीणं सुजनं = सज्जनं, विहाय = त्यक्त्वा, कुलकुशलशीलविकलेऽपि = कुलं = सत्कुले जन्म, कुशलं = चातुर्यं, शीलं = सद्वृत्तम्, तैः विकलेऽपि = विरहितेऽपि = सर्वगुणरहितेऽपीति भावः। आढ्ये = धनसम्पन्ने, कल्पतरौ = कल्पवृक्षे, इव = यथा, रज्यन्ति = अनुरक्ता भवन्ति ॥ ८ ॥

सम्पत्तिहीन व्यक्ति का गृह अत्यन्त सुन्दर होने पर भी (धन के अभाव में) नक्षत्रों से रहित आकाश की तरह शून्य, सुखे हुए तालाव की तरह उदास और श्मशान की तरह भयानक लगता है ॥ ६ ॥

धन से रहित पुरुष इतना तुच्छ हो जाता है कि वह सामने रहने पर भी किसी को नजर नहीं आता जैसे कि जल में निरन्तर उत्पन्न और विनष्ट होनेवाले बुद्बुद दिखायी नहीं पड़ते। भाव यह है कि निर्धन व्यक्ति को देखते हुए भी लोग उसकी उपेक्षा कर देते हैं ॥ ७ ॥

अच्छे कुल में उत्पन्न विद्वान् तथा सज्जन को छोड़कर कुलीनता, चतुरता तथा शील से विहीन भी धनी पुरुषों में कल्पवृक्ष की भाँति लोग अनुराग करते हैं ॥ ८ ॥

विफलमिह पूर्वसुकृतं; विद्यावन्तोऽपि कुलसमुद्भूताः।
यस्य यदा विभवः स्यात्तस्य तदा दासतां यान्ति॥ ९॥
लघुरयमाह न लोकः कामं गर्जन्तमपि पतिं पयसाम्।
सर्वमलज्जाकरमिह, यद्यत्कुर्वन्ति परिपूर्णाः॥ १०॥

एवं संप्रधार्य भूयोऽप्यचिन्तयत्—"तदहमनशनं कृत्वा प्राणानुत्सृजामि। किमनेन नो व्यर्थजीवितव्यसनेन?" एवं निश्चयं कृत्वा सुप्तः। अथ तस्य

अन्वयः—इह पूर्वसुकृतं विफलं, विद्यावन्तः, कुलसमुद्भूता अपि, यदा यस्य विभवः स्यात्, तदा तस्य दासतां यान्ति॥ ९॥

व्याख्या—इह = संसारे, पूर्वसुकृतं = पूर्वं च तत्सुकृतं च = पूर्वसंचितं सत्कर्मेत्यर्थः। विफलं = व्यर्थम् (भवति) कुलसमुद्भूताः = कुलीनाः, विद्यावन्तः = विद्वांसः, अपि, यदा = यस्मिन् समये, यस्य = पुरुषस्य, विभवः = धनम्, स्यात् = भवेत्, तदा = तस्मिन् काले, तस्य = पुरुषस्य, दासतां = आज्ञाकारितां, यान्ति = गच्छन्ति। सत्कुलोद्भवा विद्वांसोऽपि धनिनो दासा भवन्तीति भावः॥ ९॥

अन्वयः—लोकः, कामं, गर्जन्तमपि, पयसां पतिम्। 'अयं लघुः' न आह (यतः) इह परिपूर्णाः यत् कुर्वन्ति सर्वम् अलज्जाकरम् (एव भवति)॥ १०॥

व्याख्या—लोकः = जनः, कामं = यथेष्टं, गर्जन्तमपि = प्रलापं कुर्वन्तमपि, पयसां पतिम् = सागरं मेघं वा, अयं = समुद्रः, लघुः = क्षुद्रः, इति न आह = न कथयति। इह = जगति, परिपूर्णाः = विभवसम्पन्नाः जनाः, यत्किमपि कुर्वन्ति = आचरन्ति (तत्) सर्वमेव, अलज्जाकरं = अलज्जोत्पादकं भवतीति॥ १०॥

एवमिति। एवम् = पूर्वोक्तरूपेण, सम्प्रधार्य = विचार्य, निश्चित्येत्यर्थः। भूयोऽपि = पुनरपि, अचिन्तयत् = विचारयामास। तत् = तस्मात्, अहम् = मणिभद्रः, अनशनम् = उपवासम्। कृत्वा = विधाय, भोजनं त्यक्त्वेत्यर्थः। प्राणान् = जीवनम्। उत्सृजामि = त्यजामि। किम् = व्यर्थम्, अनेन = धनरहितेन, व्यर्थजीवितव्यसनेन = व्यर्थं च तत् जीवनं व्यर्थजीवनम्, तदेव व्यसनं व्यर्थजीवितव्यसनं तेन। व्यर्थजीवनयापनेनेत्यर्थः। एवम् = इत्थम्, निश्चयं कृत्वा = मनसि प्रधार्य, सुप्तः = शयितवान्। अथ = अनन्तरं, तस्य = मणिभद्रस्य, स्वप्नकाले, पद्मनिधिः = पद्मनामको निधिः, "महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दलीलाश्च खर्वश्च निधयो नव" इति। क्षपणकरूपः = बौद्ध

इस संसार में पहिले का किया हुआ उपकार व्यर्थ है, उसे कोई नहीं मानता। कुलीन विद्वान् भी जब जिसके पास धन होता है उसके दास बन जाते हैं॥९॥

बहुत गरजने वाले समुद्र को 'यह क्षुद्र है' ऐसा कोई नहीं कहता। वैसे ही धनी लोग जो कुछ करते हैं वह उनके लिये लज्जाजनक होता है॥ १०॥

इस प्रकार विचार करके पुनः सोचने लगा—मैं अनशन करके प्राणों को त्याग दूँगा। इस निर्धनता पूर्ण व्यर्थ जीवन से क्या लाभ? ऐसा निश्चय करके वह सो गया। तदनन्तर उसे स्वप्न में पद्मनामक निधि ने बौद्ध संन्यासी के रूप में दर्शन दिया

स्वप्ने पद्मनिधिः क्षपणकरूपो दर्शनं दत्त्वा प्रोवाच—"भोः श्रेष्ठिन्! मा त्वं वैराग्यं गच्छ। अहं पद्मनिधिस्तव पूर्वपुरुषोपार्जितः। तदनेनैव रूपेण प्रातस्त्वत्गृहमागमिष्यामि। तत्त्वयाऽहं लगुडप्रहारेण शिरसि ताडनीयः, येन कनकमयो भूत्वाऽक्षयो भवामि।"

अथ प्रातः प्रबुद्धः सन् स्वप्नं स्मरंश्चिन्ताचक्रमारूढस्तिष्ठति—"अहो, सत्योऽयं स्वप्नः किं वा असत्यो भविष्यति, न ज्ञायते। अथवा नूनं मिथ्याऽनेन भाव्यम्। यतोऽहमहर्निशं केवलं वित्तमेव चिन्तयामि। उक्तं च—

व्याधितेन सशोकेन चिन्ताग्रस्तेन जन्तुना।
कामार्तेनाऽथ मत्तेन दृष्टः स्वप्नो निरर्थकः॥ ११॥

भिक्षुरूपी। दर्शनं दत्त्वा = प्रत्यक्षो भूत्वा, प्रोवाच = कथितवान्। भो श्रेष्ठिन् = हे वणिक्! त्वं वैराग्यं = जीवेन नैराश्यं, मा गच्छ = न प्राप्नुहि। अहम् = पद्मनिधिः, तव = ते पूर्वपुरुषैः उपार्जितः पूर्वपुरुषोपार्जितः = पूर्वजैः संचितः। तत् = तस्मात्, अनेनैव = ईदृशेनैव, रूपेण = क्षपणकरूपेण, प्रातः = निशान्ते, त्वद्गृहम् = तव भवनम्, आगमिष्यामि। त्वया = भवता। लगुडप्रहारेण = दण्डाघातेन, शिरसि = मस्तके, ताडनीयः = हन्तव्यः। कनकमयः = सुवर्णमयः। अक्षयः = चिरस्थायी।

अथेति। प्रबुद्ध सन् = जागरितः सन्। स्मरन् = स्वप्नं ध्यायन्। चिन्ताचक्रम् = चिन्तापरम्पराम्। आरूढः = स्थितः। तिष्ठति = आस्ते। अहो = आश्चर्यम्। सत्योऽयं स्वप्नः = विश्वसनीयोऽयं स्वप्नः, असत्यः = मिथ्या वा। नूनम् = निश्चितमेव, अनेन मिथ्या भाव्यम् = स्वप्नोऽयमसत्यो भविष्यति। अहर्निशं = प्रतिदिनम्। वित्तम् = धनम्। चिन्तयामि = विचारयामि। उक्तञ्च = कथितञ्च।

अन्वयः—व्याधितेन, सशोकेन, चिन्ताग्रस्तेन, कामार्त्तेन, अथ, मत्तेन, जन्तुना दृष्टः स्वप्नः निरर्थकः (भवति)॥ ११॥

व्याख्या—व्याधितेन = व्याधिः सञ्जातोऽस्य तेन, रोगिणा। सशोकेन = शोकेन सहितं सशोकं तेन, शोकग्रस्तेन। चिन्ताग्रस्तेन = चिन्ताकुलेन, कामार्त्तेन = कामपीडितेन, विषयासक्तेनेत्यर्थः। मत्तेन = प्रमत्तेन, जन्तुना = प्राणिना, दृष्टः = अवलोकितः। स्वप्नः निरर्थकः = व्यर्थः (भवतीति)॥ ११॥

और कहा—हे सेठ, तुम निराश मत हो। मैं पद्मनामक निधि तुम्हारे पूर्वपुरुषों द्वारा अर्जित किया हुआ हूँ। मैं इसी रूप में प्रातः तुम्हारे घर जाऊँगा। तुम तब मेरे सिर में एक डण्डा मारना, जिससे मैं सोने का होकर अक्षय हो तुम्हारे घर रह जाऊँगा। तब सेठ प्रातःकाल उठकर स्वप्न को स्मरण करता हुआ चिन्ता के चक्कर में पड़ गया—'अहो, यह स्वप्न सच्चा होगा या झूठा? कुछ समझ में नहीं आता। अथवा निश्चय ही मिथ्या होगा; क्योंकि मैं नित्य धन की चिन्ता में रहता हूँ। कहा भी है :—

रोगी, शोक में पड़ा, चिन्ता से ग्रस्त, काम से व्याकुल और प्रमत्त पुरुष द्वारा देखा हुआ स्वप्न निरर्थक ही होता है॥ ११॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्य भार्यया कश्चिन्नापितः पादप्रक्षालनायाहूतः। अत्रान्तरे च यथानिर्दिष्टः क्षपणकः सहसा प्रादुर्बभूव। अथ स तमालोक्य प्रहृष्टमना यथासन्नकाष्ठदण्डेन तं शिरस्यताडयत्। सोऽपि सुवर्णमयो भूत्वा तत्क्षणात् भूमौ निपतितः। अथ तं स श्रेष्ठी निभृतं स्वगृहमध्ये कृत्वा नापितं सन्तोष्य प्रोवाच–"तदेतद्धनं, वस्त्राणि च मया दत्तानि गृहाण। भद्र! पुनः कस्यचिन्नाख्येयोऽयं वृत्तान्तः।"

नापितोऽपि स्वगृहं गत्वा व्यचिन्तयत्—"नूनमेते सर्वेऽपि नग्नकाः शिरसि ताडिताः काञ्चनमया भवन्ति। तदहमपि प्रातः प्रभूतानाहूय लगुडैः शिरसि हन्मि, येन प्रभूतं हाटकं मे भवति।" एवं चिन्तयतो महता कष्टेन निशा व्यतिचक्राम।

अथ प्रभातेऽभ्युत्थाय बृहल्लगुडमेकं प्रगुणीकृत्य, क्षपणकविहारं गत्वा

एतस्मिन्निति। एतस्मिन्नन्तरे = अस्मिन्नेव काले, तस्य = श्रेष्ठिनः पादप्रक्षालनाय = नखकर्तनरञ्जनादिकार्याय, आहूतः = आकारितः, यथानिर्दिष्टः = पूर्वस्वप्नदृष्टः, प्रादुर्बभूव= समागतः, प्रहृष्टमनाः = प्रसन्नचित्तः, आसन्नकाष्ठदण्डेन = समीपस्थलगुडेन, शिरस्यताऽयत् = शिरोभागमुद्दिश्य प्रहारमकरोत्, तत्क्षणात् = तस्मिन्नेव काले। निभृतं = प्रच्छन्नं, गृहाण = गृह्यताम्। नाख्येयः = न कथितव्यः।

नापित इति। व्यचिन्तयत् = अचिन्तयत्, नग्नकाः = दिगम्बराः, बौद्धभिक्षव शिरसि दण्डहताः=दण्डेन शिरसि ताडिताः, काञ्चनमया=स्वर्णमया, प्रभूतान्=प्रचूरान्, हाटकं = सुवर्णम्, व्यतिचक्राम = व्यपगता। अभ्युत्थाय = शयनादुत्थाय, प्रगुणीकृत्य = प्रस्तुतं विधाय सज्जीकृत्य, क्षपणकविहारं = जैनभिक्षुकाणामुपाश्रयं, जिनेन्द्रस्य = जिनदेवस्य, प्रदक्षिणत्रयं विधाय = त्रिवारं प्रदक्षिणां कृत्वा, जानुभ्यामवनिं नत्वा = जानुभ्यां भूमिं

वह ऐसा सोच ही रहा था कि इसी बीच उसकी पत्नी ने पाँव रँगाने के लिए किसी नाई को बुलाया। उसी समय स्वप्न में जैसा बताया था, वह बौद्ध संन्यासी भी एकाएक दिखाई पड़ा। तब सेठ उसे देखकर बहुत प्रसन्न मन हुआ और पास में रखी हुई लाठी से उसने संन्यासी के सिर पर मारा। संन्यासी तत्काल सुवर्णमय होकर भूमि पर गिर पड़ा। तदनन्तर सेठ ने उसको चुपचाप अपने घर में कर लिया और फिर नाई को समझा बुझाकर कहा—मैं तुम्हें धन और वस्त्र देता हूँ, ले लो। परन्तु भद्र! तुम इस बात को किसी से भी मत कहना।

नाई भी अपने घर जाकर सोचने लगा—"निश्चय ही ये सभी बौद्ध संन्यासी सिर पर लाठी मारने से सुवर्णमय बन जाते हैं। तो मैं भी प्रातःकाल बहुत से बौद्ध संन्यासियों को बुलाकर उन्हें लाठी से मारूँगा। ऐसा करने से मुझे बहुत-सा सोना मिल जाएगा। इस प्रकार चिन्तित होते हुए उसने बड़े कष्ट से रात्रि बीतायी।

अनन्तर प्रातःकाल उठकर एक बहुत बड़ी लाठी तैयार करके बौद्धों के विहार में

जिनेन्द्रस्य प्रदक्षिणत्रयं विधाय, जानुभ्यामवनिं गत्वा वक्त्रद्वारन्यस्तोत्तरीयाञ्चलस्तारस्वरेणेमं श्लोकमपठत्—

जयन्ति ते जिना येषां केवलज्ञानशालिनाम्।
आजन्मनः स्मरोत्पत्तौ मानसेनोषरायितम्॥ १२॥

अन्यच्च—

सा जिह्वा या जिनं स्तौति तच्चित्तं यज्जिने रतम्।
तावेव च करौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ॥ १३॥

तथाच—

ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं,
पश्यानङ्गशरातुरं जनमिमं त्राताऽपि नो रक्षसि।

प्रणम्य, वक्त्रद्वारन्यस्तोत्तरीयाञ्चलः = उत्तरीयेण पिहितमुखः, वक्त्रद्वारे न्यस्तमुत्तरीयस्याञ्चलं येन सः। तारस्वरेण = उच्चैः, अपठत् = उच्चारयामास।

अन्वयः—केवलज्ञानशालिनां येषाम् आजन्मनः स्मरोत्पत्तौ मानसेन ऊषरायितं ते जिनाः जयन्ति॥ १२॥

व्याख्या—केवलज्ञानशालिनां=ज्ञानपरायणानां (ज्ञानेनकेवल शालन्ते = शोभन्ते ये ते ज्ञानशालिनस्तेषामित्यर्थः), येषां = जिनानां, आजन्मनः = जन्मत आरभ्य, स्मरोत्पत्तौ = कामप्रादुर्भावविषये, मानसेन = चित्तेन, ऊषरायितं = क्षारभूमिवदाचरितम्। क्षारभूमौ बीजमिव जिनानां मनसि कामो नोत्पद्यत इति भावः। जयन्ति = सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते॥ १२॥

अन्वयः—सा जिह्वा या जिनं स्तौति, तच्चित्तं यत् जिने रतं, तौ एव च करौ श्लाघ्यौ यौ करौ तत्पूजाकरौ (स्तः)॥ १३॥

व्याख्या—सा जिह्वा = प्रशंसार्हा जिह्वा, जिनं = अर्हन्तम्, स्तौति = स्तुतिगोचरतां नयति, तच्चित्तं = तदेव मनः, जिने रतं = जिनेऽनुरक्तं भवति, करौ = हस्तौ, श्लाघ्यौ = प्रशंसनीयौ, तत्पूजाकरौ = जिनदेवपूजकौ, (स्तः)॥ १३॥

अन्वयः—ध्यानव्याजमुपेत्य कां चिन्तयसि, क्षणं चक्षुः उन्मील्य अनङ्गशरातुरम्

जाकर उसने भगवान् जिनदेव की तीन बार परिक्रमा की और घुटनों के बल जमीन पर बैठकर दुपट्टे को मुख पर लगाकर उच्चस्वर से इस श्लोक को पढ़ने लगा—

वे केवलज्ञान का आश्रय रखने वाले जिनदेव ही सर्वोत्कृष्ट हैं, जिन्होंने जन्म से ही काम के विषय में अपने मन को ऊसर भूमि की तरह बना लिया है॥ १२॥

और भी,

वही जीभ है जो जिनदेव की स्तुति करती है, वही चित्त है जो जिनदेव में सदा अनुरक्त है और वे ही हाथ प्रशंसनीय हैं, जो जिनदेव की पूजा में सदा निरत रहते हैं॥ १३॥

ध्यान के बहाने किस स्त्री का चिन्तन कर रहे हो? क्षण भर के लिए अपनी

मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यः पुमान् ;
सेर्ष्यं मारवधूभिरित्यभिहितो बौद्धो जिनः पातु वः ॥ १४ ॥

एवं संस्तुत्य, ततः प्रधानक्षपणकमासाद्य क्षितिनिहितजानुचरणः "नमोस्तु वन्दे" इत्युच्चार्य, लब्धधर्मवृद्ध्याशीर्वादः मुखमालिकाऽनुग्रहलब्धव्रतादेश उत्तरीयनिबद्धग्रन्थिः सप्रश्रयमिदमाह—"भगवन्! अद्य विहरणक्रिया समस्त-मुनिसमेतेनास्मद्गृहे कर्त्तव्या।"

इमं जनं पश्य। त्राता अपि नो रक्षसि, मिथ्या कारुणिकः असि, त्वत्तः निर्घृणतरः अन्यः पुमान् कुतः। मारवधूभिः सेर्ष्यम् इति अभिहितः बौद्धः जिनः वः पातु ॥ १४ ॥

व्याख्या—ध्यानव्याजमुपेत्य = कपटसमाधिं विधाय, कां = प्रेयसीम्, कामिनीम्। चिन्तयसि = ध्यायसि, क्षणं = क्षणमात्रं, चक्षुः = नयनम्, उन्मील्य = उद्घाट्य, अनङ्ग-शरातुरं = कामबाणपीडितम्, इमं जनं = पुरोवर्तिनं जनम्, पश्य = अवलोकय, त्राता-ऽपि = रक्षकोऽपि, नो रक्षसि = रक्षां न करोषि, मिथ्या = असत्यमेव, कारुणिकोऽसि = दयालुरसि, त्वत्तः = युष्मत्, अन्यः = अतिरिक्तः, निर्घृणतरः = निर्दयः, कुतः = कुत्रास्ति, मारवधूभिः = कामाकुलाभिर्वा स्त्रीभिः, सेर्ष्यम् = ईर्ष्यापूर्वकम्, इत्यभिहितः = इत्थं निगदितः। बौद्धोजिनः = बौद्धभिक्षुः, वः = युष्मान्, पातु = रक्षतु ॥ १४ ॥

एवमिति। एवं = पूर्वोक्तक्रमेण। संस्तुत्य = सम्प्रार्थ्य, प्रधानक्षपणकं = मुख्य-संन्यासिनं, क्षितिनिहितजानुचरणाः = क्षितौ = भूमौ, निहितौ = पातितौ, जानुचरणौ = जानुपादौ येनासौ। लब्धधर्मवृद्ध्याशीर्वादेः = लब्धः = प्राप्तः, धर्मवृद्धेः आशीर्वादो येन सः, तव धर्मवृद्धिर्भवेदिति आशीषं प्राप्येत्यर्थः। मुखमालिकाऽनुग्रहलब्धव्रतादेशः = मुख-मालिका = पुष्पमालिका, कण्ठी वा, तस्या अनुग्रहेण = प्रदानेन प्राप्तव्रतादेशो येन सः। उत्तरीयनिबद्धग्रन्थिः = दुकुलाबद्धग्रन्थिः। सप्रश्रयं = सविनयं, विहरणक्रिया = भिक्षा-टनम्, समेतेन = सकलमुनिभ्यः सहितेन, अस्मद्गृहे = मम गृहे कर्त्तव्या—भवन्तः सर्वेऽपि मम गृहे भोजनं कुर्वन्त्विति।

आँखे खोलकर कामदेव के बाणों से पीड़ित इस जन की ओर तो देखो। तुम रक्षक होकर भी रक्षा नहीं करते हो। तुम झूठे ही दयालु कहे जाते हो, तुम से अधिक निर्दयी दूसरा कौन पुरुष होगा ? इस प्रकार ईर्ष्या के साथ काम-स्त्रियों द्वारा अभिहित बौद्ध भगवान् जिन आपकी रक्षा करें ॥ १४ ॥

इस प्रकार स्तुति करने के बाद प्रधान भिक्षु के समीप गया और पृथ्वी पर घुटने टेककर बोला—भगवन् आपको नमस्कार है, आपको प्रणाम करता हूँ। तब भिक्षु द्वारा 'तुम्हारी धर्मवृद्धि हो' ऐसा आशीर्वाद ग्रहण कर तथा उसके द्वारा प्रदान की गयी कण्ठी के कृपारूप से व्रतदीक्षा को ग्रहण करता हुआ नाई उत्तरीय को गले में बाँधकर नम्रतापूर्वक बोला—"भगवन्! आज सब मुनियों के साथ मेरे घर भोजन होना चाहिए।"

स आह—"भोः श्रावकः! धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि, किं वयं ब्राह्मणसमानाः यत आमन्त्रणं करोषि? वयं सदैव तत्कालपरिचर्यया भ्रमन्तो भक्तिभाजं श्रावकमवलोक्य तस्य गृहे गच्छामः। तेन कृच्छ्रादभ्यर्थितास्तद्गृहे प्राणधारणमात्रामशनक्रियां कुर्मः। तद्गम्यताम्, नैवं भूयोऽपि वाच्यम्।"

तच्छ्रुत्वा नापित आह—"भगवन्! वेद्म्यहं युष्मद्धर्मम्। परं भवतो बहुश्रावका आह्वयन्ति। साम्प्रतं पुनः पुस्तकाच्छादनयोग्यानि कर्पटानि बहुमूल्यानि प्रगुणीकृतानि। तथा पुस्तकानां लेखनार्थं लेखकानां च वित्तं सञ्चितमास्ते। तत्सर्वथा कालोचितं कार्यम्।"

ततो नापितोऽपि स्वगृहं गतः। तत्र च गत्वा खदिरमयं लगुडं सज्जीकृत्य कपाटयुगलं द्वारि समाधाय सार्द्धप्रहरैकसमये भूयोऽपि विहारद्वारमाश्रित्य सर्वान्क्रमेण निष्क्रामतो गुरुप्रार्थनया स्वगृहमानयत्। तेऽपि सर्वे कर्पटवित्त-

---

स इति। भो श्रावकः = भो जिनानुरागिन्। किमेवं वदसि = कथमेतादृशं कथयसि, यतः = यस्माद्धि, आमन्त्रणं = निमन्त्रणम्, तत्कालपरिचर्यया = भिक्षाटनकालोचितविहारेण, भक्तिभाजं = श्रद्धावन्तम् श्रावकं = जैनगृहस्थम्, कृच्छ्रादभ्यर्थिताः = बहुशः प्रार्थिताः, प्राणधारणमात्रां = जीवनरक्षणमात्राम्, अशनक्रियां = भोजनम्, न वाच्यं = न वक्तव्यम्, वेद्म्यहं = सर्वमवगच्छामि, आह्वयन्ति = भोजनार्थं निमन्त्रणं कुर्वन्ति, पुस्तकाच्छादनयोग्यानि=ग्रन्थबन्धनोचितानि, प्रगुणीकृतानि = सञ्चितानि, कालोचितं = समयोचितं, कार्यं = करणीयम्।

तत इति। खादिरमयं = खदिरकाष्ठनिर्मितं, लगुडं = दण्डं, समाधाय = परीक्ष्य वा, सार्द्धप्रहरैकसमये = दशघटिकावादनकाले, विहारद्वारं = जैनाश्रमद्वारं, निष्क्रामतः =

भिक्षु बोला—हे श्रावक! तुम धर्मज्ञ होकर भी ऐसा क्यों कह रहे हो? क्या हम लोग ब्राह्मण समान हैं, जो तुम निमन्त्रण दे रहे हो? भोजन का समय उपस्थित होने पर हम लोग घूमते हुए किसी श्रद्धालु भक्त को देखकर उसके घर चले जाते हैं और उसके बहुत आग्रह करने पर हम केवल प्राणधारण हेतु आवश्यक भोजन ग्रहण करते हैं। इसलिए तुम यहाँ से चले जाओ, और फिर कभी ऐसी बात न कहना।

भिक्षु की ऐसी बात सुनकर नाई बोला—भगवन्! मैं आपके धर्म नियमों को भलीभाँति जानता हूँ, परन्तु आपको बहुत से श्रावक बुलाते रहते हैं। इस समय मैंने अनेक पुस्तकों को बाँधने योग्य बहुमूल्य वस्त्रों को एकत्रित कर रखा है और ग्रन्थों को लिखने के लिए लेखकों के निमित्त धन भी संचित किया है। अतः आप सब प्रकार से विचार कर समय के अनुकूल कार्य कीजिए।

ऐसा कहकर नाई भी अपने घर चला गया। घर जाकर उसने एक खदीर की लाठी तैयार की और घर के दोनों किवाड़ बन्द कर दिये। डेढ़ पहर का समय होने पर वह पुनः भिक्षुओं के विहार (मठ) के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया और क्रमशः निकलने वाले उन सब भिक्षुओं को बहुत ही अनुनय-विनय के साथ घर ले आया। वे

लोभेन भक्तियुक्तानपि परिचितश्रावकान् परित्यज्य प्रहृष्टमनसस्तस्य पृष्ठतो ययुः । अथवा साध्विदमुच्यते—

> एकाकी गृहसन्त्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
> सोऽपि संवाह्यते लोके तृष्णया पश्य कौतुकम् ॥ १५ ॥
> जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
> चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते, तृष्णैका तरुणायते ॥ १६ ॥

ततः परं गृहमध्ये तान् प्रवेश्य, द्वारं निभृतं पिधाय, लगुडप्रहारैः शिरस्य ताडयत् । तेऽपि ताड्यमाना एके मृताः, अन्ये भिन्नमस्तकाः फूत्कर्तुमुपचक्रमिरे । अत्रान्तरे तमाक्रन्दमाकर्ण्य, कोटरक्षपालेनाऽभिहितम—"भोः भोः ! किमयं कोलाहलो नगरमध्ये ? तद्गम्यताम् ।"

निर्गच्छतः, गुरुप्रार्थनया = विशेषाग्रहेण, आनयत् = स्वगृहं प्रापयत्, कर्पटवित्तलोभेन = वस्त्रद्रव्यादिलोभेन, पृष्ठतो ययुः = अनुययुः ।

अन्वयः—कौतुकं पश्य, एकाकी, गृहसन्त्यक्तः, पाणिपात्रः, दिगम्बरः सोऽपि लोके तृष्णया संवाह्यते ॥ १५ ॥

व्याख्याः—कौतुकं पश्य = विस्मयं पश्य, एकाकी = एकः सन्, गृहसन्त्यक्तः = गृहत्यागी, पाणिपात्रः=करपात्री, निवासस्थानशून्यः दिगम्बरः = दिग्वस्त्रः, विवस्त्रः, लोके= संसारे, तृष्णा = लालसा, संवाह्यते = सम्यग्वाह्यते, परिचाल्यते ॥ १५ ॥

अन्वयः—जीर्यतः केशा जीर्यन्ते, जीर्यतः दन्ता जीर्यन्ति, चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते, एका तृष्णा तरुणायते ॥ १६ ॥

व्याख्या—जीर्यतः = जीर्णस्य, वृद्धस्येति भावः, केशाः = कचाः, जीर्यन्ते = जीर्णा भवन्ति, शुक्लीभवन्ति, दन्ताः=दशनाः, जीर्यन्ति=शिथिला भवन्ति, चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते= दर्शनश्रवणाऽक्षमे भवतः, तरुणायते = तरुणवदाचरति, न जीर्णा भवन्तीत्यर्थः ॥ १६ ॥

तत इति । ततः परं = तेषामागमनानन्तरं, गृहमध्ये = गृहाभ्यन्तरे, निभृतं = सुप्रच्छन्नं, पिधाय = अवरुध्य, ताड्यमानाः = व्याहताः, अन्ये = अवशिष्टाः, भिन्नमस्तकाः = विदीर्णशिरसः, फूत्कर्तुं =चीत्कारं कर्तुम्, उपचक्रमिरे = आरेभिरे, कोटरक्षपाले-

---

सब भी धन और वस्त्र के लोभ में पड़कर अन्य भक्त परिचित श्रावकों को छोड़कर प्रसन्नमन होते हुए उसके पीछे-पीछे चल पड़े । अथवा यह ठीक ही कहा है—

अकेला घुमनेवाला, गृहत्यागी, हाथों से ही पात्र का काम लेने वाला, तथा नग्न रहने वाला भी संसार में तृष्णा से आकर्षित होता है, इस आश्चर्य को देखो ॥ १५ ॥

बूढ़े होने से केश पक जाते हैं, दाँत हिल जाते हैं, आँखे अन्धी हो जाती हैं, कान बहरे हो जाते हैं किन्तु एक तृष्णा ही ऐसी है जो सदा तरुण होती जाती है ॥ १६ ॥

उसने उन भिक्षुओं को घर के भीतर दूसरे कमरे में प्रवेश कराकर द्वार को चुपचाप बन्द कर दिया और उन्हें शिर पर लाठी से मारना प्रारम्भ कर दिया । इस

ते च सर्वे तदादेशकारिणस्तत्सहिता वेगात्तद्गृहं गता यावत् पश्यन्ति तावद्रुधिरप्लावितदेहाः पलायमाना नग्नका दृष्टाः। पृष्टाश्च भोः, किमेतत् ? ते प्रोचुर्यथाऽवस्थितं नापितवृत्तम्।

तैरपि स नापितो बद्धो हतशेषैः सह धर्माधिष्ठानं नीतः। तैर्नापितः पृष्टः—"भोः, किमेतद्भवतां कुकृत्यमनुतिष्ठतम् ?"

स आह—"किं करोमि। मया श्रेष्ठिमणिभद्रगृहे दृष्टः एवंविधो व्यतिकरः।" सोऽपि सर्वं मणिभद्रवृत्तान्तं यथादृष्टमकथयत्।

ततः श्रेष्ठिनमाहूय, ते भणितवन्तः—"भोः श्रेष्ठिन् ! किं त्वया कश्चित्क्षपणको व्यापादितः ?" ततस्तेनाऽपि सर्वः क्षपणकवृत्तान्तस्तेषां निवेदितः। अथ तैरभिहितम्—"अहो, शूलमारोप्यतामसौ दुष्टात्मा कुपरीक्षितकारी नापितः।"

न = दुर्गरक्षपालेन, अभिहितं = निगदितं, कोलाहलः = आक्रन्दरवः, तदादेशकारिणः= तस्याज्ञापालकः, तत्सहिताः = दुर्गपालेन सहिताः, रुधिरप्लावितदेहाः = रक्तार्द्रकलेवराः, पलायमानाः = इतस्ततो धावमानाः, अवस्थितं=संयातम्।

तैरपीति। तैरपि = राजपुरुषैरपि, हतशेषैः = मरणादवशिष्टैः, क्षपणकैः सह, धर्माधिष्ठानं = न्यायालयम्, नीतः = प्रापितः, तैः = न्यायाधीशैः, कुकृत्यं = गर्हितं कर्म, अनुष्ठितम् = कृतम्, व्यतिकरः = विपरीताचरणं, भणितवन्तः = कथितवन्तः, निवेदितः = प्रार्थितः, शूलं = कीलं, कुपरीक्षितकारी = असमीक्ष्यकारी, तथाऽनुष्ठिते = शूलमारोपिते सति, तैः = धर्माधिकारिभिः, अभिहितम् = कथितम्। कुदृष्टमित्यादि पूर्वंव्याख्यातम् ॥१७॥

प्रकार प्रहार किये जाने पर कुछ तो मर गये और कुछ के शिर कट गये। उन्होने चिल्लाना शुरू कर दिया। इसी बीच उस आनन्द को सुनकर पास के कोतवाल के पुलिस अधिकारियों ने सिपाहियों से कहा—अरे, देखो ! नगर में यह भयङ्कर कोलाहल कैसे हो रहा है ? जाओ, जाओ देखो।

वे सब उनकी आज्ञा मानकर उनके साथ ही शीघ्रता से उस नाई के घर की ओर गये और जाकर देखते हैं कि वहाँ तो खून से लथपथ देहवाले तथा भागते हुए बौद्ध संन्यासी दिखाई पड़े। उन्होंने संन्यासियों से पूछा—अरे, यह क्या है ? उन्होंने यथाघटित नाई के वृत्तान्त को कहा। उन राजकर्मचारियों ने उस नाई को गिरफ्तार कर लिया और मरने से बचे हुए संन्यासियों के साथ न्यायालय में ले आये। न्यायाधिकारियों ने उस नाई से पूछा—तुमने ऐसा कुकर्म क्यों किया ? नाई बोला—मैं क्या करूँ ? मैंने सेठ मणिभद्र के घर-पर इस प्रकार का उपक्रम देखा था। उसने मणिभद्र के यहाँ घटित यथादृष्ट समस्त वृत्तान्त को कह सुनाया।

तब धर्माधिकारियों ने सेठ मणिभद्र को बुलाकर कहा—हे श्रेष्ठिन्, क्या तुमने किसी सन्यासी को मारा है ? तब उसने भी क्षपणक के सम्पूर्ण वृत्तान्त को उन्हें बता दिया। तदनन्तर न्यायाधिकारियों ने कहा—अहो, इस कुपरीक्षितकारी दुष्टात्मा नाई को शूली पर चढ़ा दो।

तथाऽनुष्ठिते तैरभिहितम्—

कुदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम् ।
तन्नरेण न कर्तव्यं, नापितेनाऽत्र यत्कृतम् ॥ १७ ॥

अथवा साध्विदमुच्यते—

अपरीक्ष्य न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्षितम् ।
पश्चाद्भवति सन्तापो ब्राह्मण्या नकुले यथा ॥ १८ ॥

मणिभद्र आह—"कथमेतत् ?"

ते धर्माधिकारिणः प्रोचुः—

२. ब्राह्मणीनकुल-कथा

"कस्मिंश्चिदधिष्ठाने देवशर्मा नाम ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म। तस्य भार्या प्रसूता सुतमजनयत्। तस्मिन्नेव दिने नकुली नकुलं प्रसूय मृता। अथ सा

अन्वयः—अपरीक्ष्य न कर्तव्यं, सुपरीक्षितं कर्तव्यम् । पश्चात्संतापो भवति, यथा ब्राह्मण्या नकुले (अभवदिति) ॥ १८ ॥

व्याख्या—अपरीक्ष्य = असमीक्ष्येत्यर्थः, न कर्तव्यं = न विधेयम्, सुपरीक्षितं=सम्यगालोचितं, पश्चात् = अपरीक्ष्य कृते सति, संतापः=अनुतापः, शोकः वा, नकुले = मृतनकुले, यथा=इव ॥ १८ ॥

कस्मिंश्चिदिति । अधिष्ठाने = ग्रामे, प्रतिवसति स्म = निवसति स्म, प्रसूय = उत्पाद्य, मृता = दिवं गता, सुतवत्सला = पुत्रप्रेमयुक्ता, दारकवत् = पुत्रवत्, तमपि = मातृहीनं नकुलं स्तन्यदानाभ्यङ्गमर्दनादिभिः = दुग्धपानतैललेपनादिकार्यैः, पुपोष = पालया-

---

ऐसा कहने पर उन्होंने कहा—

जो अच्छी प्रकार न देखा गया हो, अच्छी प्रकार न जाना गया हो तथा अच्छी प्रकार परीक्षित न हो वैसा कार्य मनुष्य को नहीं करना चाहिये जैसा कि नाई ने किया है ॥ १७ ॥

अथवा ठीक ही कहा है—

विना परीक्षा किये हुए किसी भी कार्य को नहीं करना चाहिये। अच्छी प्रकार परीक्षा कर लेने पर ही कार्य को करे। अन्यथा बाद में वैसे ही पश्चात्ताप होता है जैसे कि ब्राह्मणी को नेवले के लिए हुआ था ॥ १८ ॥

मणिभद्र ने कहा—वह कथा कैसी है ? उन धर्माधिकारियों ने कहा—

ब्राह्मणी और नकुल की कथा

किसी स्थान में देवशर्मा नामका एक ब्राह्मण रहा करता था। उसकी गर्भवती स्त्री ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसी दिन एक नेवली को भी एक नेवला

सुतवत्सला दारकवत्तमपि नकुलं स्तन्यदानाऽभ्यङ्गमर्दनादिभिः पुपोष। परं तस्य न विश्वसिति। अपत्यस्नेहस्य सर्वस्नेहातिरिक्ततया सततमेवमाशङ्कते यत्—कदाचिदेष स्वजातिदोषवशादस्य दारकस्य विरुद्धमाचरिष्यति इति। उक्तं च—

कुपुत्रोऽपि भवेत्पुंसां हृदयानन्दकारकः।
दुर्विनीतः, कुरूपोऽपि, मूर्खोऽपि, व्यसनी; खलः ॥ १९ ॥
एवं च भाषते लोकश्चन्दनं किल शीतलम्।
पुत्रगात्रस्य संस्पर्शश्चन्दनादतिरिच्यते ॥ २० ॥
सौहृदस्य न वाच्छन्ति जनकस्य हितस्य च।
लोकाः प्रपालकस्याऽपि, यथा पुत्रस्य बन्धनम् ॥ २१ ॥

मास, तस्य = नकुलस्य, न विश्वसिति = विश्वासं नैव करोति स्म, अपत्यस्नेहस्य = पुत्रस्नेहस्य, सर्वस्नेहातिरिक्ततया = अन्यापेक्षया स्नेहाधिकतया, स्वजातिदोषवशात् = नकुलजातिदोषाभ्यासात्, दारकस्य = मत्पुत्रस्य, आचरिष्यति = विरुद्धं करिष्यति।

अन्वयः—दुर्विनीतः, कुरूपः, मूर्खः, व्यसनी, खलः, कुपुत्रोऽपि पुंसां हृदयानन्दकारकः भवति ॥ १९ ॥

व्याख्या—दुर्विनीतः = दुर्नयः, कुरूपः = असुन्दरोऽपि, मूर्खः = मूढोऽपि, व्यसनी= कामादिष्वासक्तः, खलः = दुष्टः, कुपुत्रः = कुत्सितोऽपि पुत्रः, पुंसां = जनानां, हृदयानन्दकारकः = मनोमोदकरः, भवेत् = जायते ॥ १९ ॥

अन्वयः—लोकः एवं भाषते (यत्) चन्दनं किल शीतलं (भवति), पुत्रगात्रस्य संस्पर्शः चन्दनादतिरिच्यते ॥ २० ॥

व्याख्या—लोकः = जनः, भाषते = वदते, चन्दनं शीतलं किल = चन्दनं शीतलत्वेन प्रसिद्धम्, (परं) पुत्रगात्रस्य = पुत्रदेहस्य, संस्पर्शः = स्पर्शः, अतिरिच्यते = अधिकसुखकरो भवति ॥ २० ॥

अन्वयः—लोकाः यथा पुत्रस्य बन्धनं वाच्छन्ति (तथा) सौहृदस्य, जनकस्य, हितस्य, प्रपालकस्याऽपि न (वाच्छन्ति) ॥ २१ ॥

उत्पन्न हुआ। परन्तु नेवली प्रसव की पीड़ा से मर गयी। उस पुत्रवत्सला ब्राह्मणी ने अपने पुत्र के समान ही उस नेवले को भी दूध पिलाना, मालिश करना आदि करते हुए बड़ा किया। परन्तु वह उस पर विश्वास नहीं करती थी, क्योंकि उसके मन में सदा डर रहा करता था कि वह कभी अपनी जाति के दोष से उसके पुत्र के विरुद्ध आचरण न कर दे। कहा भी है—

अपना पुत्र चाहे दुर्विनीत, कुरूप, मूर्ख, व्यसनी, दुष्ट और बुरा क्यों न हो वह माता-पिता के हृदय को आनन्द देनेवाला ही होता है ॥ १९ ॥

लोग ऐसा कहते हैं कि चन्दन बहुत शीतल होता है, परन्तु पुत्र के शरीर का संस्पर्श तो उस चन्दन से भी अधिक शीतल होता है ॥ २० ॥

लोग जिस प्रकार पुत्र के स्नेह बन्धन को चाहते हैं, वैसे न मित्र के, न

अथ सा कदाचिच्छय्यायां पुत्रं शाययित्वा जलकुम्भमादाय, पतिमुवाच—"ब्राह्मण ! जलार्थमहं तडागे यास्यामि । त्वया पुत्रोऽयं नकुलाद्रक्षणीयः ।"

अथ तस्यां गतायां, पृष्ठे ब्राह्मणोऽपि शून्यं गृहं मुक्त्वा भिक्षार्थं क्वचिन्निर्गतः। अत्रान्तरे दैववशात् कृष्णसर्पो बिलान्निष्क्रान्तः। नकुलोऽपि तं स्वभाववैरिणं मत्वा, भ्रातु रक्षणार्थं सर्पेण सह युद्ध्वा, सर्पं खण्डशः कृतवान्।

ततो रुधिराप्लावितवदनः सानन्दं स्वव्यापारप्रकाशनार्थं मातुः संमुखो गतः। माताऽपि तं रुधिरक्लिन्नमुखमालोक्य शङ्कितचित्ता "नूनमनेन दुरात्मना दारको भक्षितः" इति विचिन्त्य कोपात्तस्योपरि तं जलकुम्भं चिक्षेप।

एवं सा नकुलं व्यापाद्य यावत्प्रलपन्ती गृहे आगच्छति, तावत्सुतस्तथैव

व्याख्या—पुत्रस्य बन्धनं=पुत्रस्नेहपाशम्, वाच्छन्ति=अभिलपन्ति, सौहृदस्य=मित्रस्य, जनकस्य = पितुः, हितस्य = हितकारिणः, प्रपालकस्य = पोषकस्य, संरक्षकस्य ॥ २१ ॥

अथेति । शय्यायां = पर्यङ्के, जलार्थं = जलाहरणाय, गतायां = प्रस्थितायां, पृष्ठे = पश्चात्, शून्यं = बालकातिरिक्तजनरहितं, मुक्त्वा = विहाय, निष्क्रान्तः = निर्गतः, स्वभाववैरिणं = सहजशत्रुम्, मत्वा = स्वीकृत्य, युद्ध्वा = युद्धं कृत्वा, खण्डशः = विच्छिन्नकायः, खण्डं खण्डं, कृतवान् =विहितवान्, रुधिराप्लावितवदनः=रुधिराक्रान्तमुखः, स्वव्यापारप्रकटनार्थं = स्वकृत्यप्रकटनार्थं, संमुखो गतः = सन्निकटं गतवान्, रुधिरक्लिन्नमुखं = रुधिरसंलिप्ताननं, शङ्कितचित्ता = आशङ्कितहृदया, दुरात्मना = दुष्टेन, दारकः = पुत्रः, भक्षितः = खादितः; जलकुम्भं = वारिघटं, चिक्षेप = पातयामास ।

एवमिति । एवम् = अनेन प्रकारेण, प्रलपन्ती = विलपन्ती, तथैव = यथा स्थापित-

---

पिता के, न हितकारी पुरुष के और न पालन-पोषण करने वालों के बन्धन को चाहते हैं ॥ २१ ॥

एक दिन वह ब्राह्मणी अपने पुत्र को शय्या पर सुलाकर जल के घड़े को लेकर पति से बोली—"ब्राह्मण, मैं जल भरने के लिए तालाब जा रही हूँ, तुम नकुल से इस बच्चे की रक्षा करना ।" ब्राह्मणी के चले जाने पर वह ब्राह्मण भी घर को निर्जन छोड़कर भिक्षा के लिए बाहर निकल पड़ा। उसी बीच दुर्भाग्यवश एक काला सर्प बिल से निकला। नेवला भी उसे अपना स्वाभाविक शत्रु समझकर, भाई को बचाने के लिए सर्प के साथ युद्ध करके उस सर्प के टुकड़े-टुकड़े कर दिये ।

तब वह खून से लिप्त मुखवाला नेवला आनन्दपूर्वक अपना कर्म बताने के लिए माता के सम्मुख चला गया। माता ने उसका रुधिर से लिप्त मुख देखकर शङ्कितचित्त होकर "निश्चय ही इस दुष्टात्मा ने मेरे बच्चे को खा लिया है" ऐसा विचार कर क्रोध में आकर उसके ऊपर जल के घड़े को फेंक दिया ।

इस प्रकार वह नेवले को मारकर जब प्रलाप करती हुई अपने घर पर आयी तो देखा कि उसका बेटा पूर्ववत् शय्या पर सोया हुआ है और पास में काले साँप के टुकड़े

सुप्तस्तिष्ठति। समीपे कृष्णसर्पं खण्डशः कृतमवलोक्य पुत्रवधशोकेनात्मशिरो वक्षःस्थलं च ताडितुमारब्धा। अत्रान्तरे ब्राह्मणो गृहीतनिर्वापः समायातो याव-त्पश्यति, तावत्पुत्रशोकाऽभितप्ता ब्राह्मणी प्रलपति—"भो भो लोभात्मन्! लोभा-ऽभिभूतेन त्वया न कृतं मद्वचः। तदनुभव साम्प्रतं पुत्रमृत्युदुःखवृक्षफलम्।" अथवा साध्विदमुच्यते—

अतिलोभो न कर्तव्यो लोभं नैव परित्यजेत्।
अतिलोभाऽभिभूतस्य चक्रं भ्रमति मस्तके॥ २२॥

ब्राह्मण आह—"कथमेतत्?" सा प्राह—

३. लोभाविष्टचक्रधर-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणपुत्राः परस्परं मित्रतां गता वसन्ति स्म।

स्तथा, पुत्रवधशोकेन = नकुलवधशोकेन, आत्मशिरः = स्वमस्तकं, वक्षःस्थलं च ताडितुं= हन्तुम्। अत्रान्तरे = एतस्मिन्नेव समये। ब्राह्मणः = विप्रः। गृहीतनिर्वापः = लब्धभिक्षः। पुत्रशोकाभितप्ता = पुत्रस्य = सुतस्य, नकुलस्य शोकेन = वधेन, अभितप्ता = सन्तप्ता, ब्राह्मणी = विप्रपत्नी, प्रलपति = प्रलापं कुर्वती। लोभाभिभूतेन = लोभाक्रान्तेन, मद्वचः = मद्वाक्यं। साम्प्रतम् = अधुना। पुत्रमृत्युदुःखवृक्षफलम् = सुतवधशोकतरु फलम्। अथवा साधु = समीचीनमेव, उच्यते = कथ्यते।

अन्वयः—अतिलोभः, न, कर्त्तव्यः, लोभं, नैव परित्यजेत, अतिलोभाभिभूतस्य (पुरुषस्य) मस्तके, चक्रं भ्रमति॥ २२॥

व्याख्या—अतिलोभः = अधिकलोभः, न कर्त्तव्यः = न कार्यः, लोभं = तृष्णां, सर्वथाऽपि नैव = न, परित्यजेत=दूरीकुर्यात्। अतिलोभेन अभिभूतः योऽसौ अतिलोभाभि-भूतस्तस्य = अधिकतृष्णातिक्रान्तस्य पुरुषस्य, मस्तके = मूर्ध्नि, चक्रम् = दुःखरूपं चक्रं, भ्रमति = भ्राम्यति, अतिलोभो हि विपत्तेः कारणं भवतीति॥ २२॥

कस्मिंश्चिदेति। परस्परं = मिथः, मित्रतां गताः = मैत्रीं प्राप्ताः, दारिद्र्योपहताः = दारिद्र्यदुःखेन दुःखिताः, मन्त्रं चक्रुः = मन्त्रयामासुः।

हुए पड़े हैं—यह देखकर वह पुत्रवध के शोक से अपने शिर और छाती को पीटने लगी।

उसी बीच ब्राह्मण भी भिक्षा लेकर लौटा और जैसे ही देखता है, पुत्र शोक से सन्तप्त ब्राह्मणी विलखती हुई बोली—अरे लोभी, लोभवश तुमने मेरा कहा हुआ नहीं किया। अब तुम बेटे के मर जाने के दुःखरूपी वृक्ष का फल चखो। अथवा ठीक ही कहा है—

मनुष्य को चाहिए कि वह सर्वथा लोभ का त्याग न करे, परन्तु अत्यधिक लोभ भी न करे; क्योंकि अत्यधिक लोभी मनुष्य के मस्तक पर चक्र घूमता है॥ २२॥

ब्राह्मण ने पूछा—"यह कैसे?" उस ब्राह्मणी ने कहा—

लोभी चक्रधर की कथा

किसी स्थान पर चार ब्राह्मणों के पुत्र परस्पर मित्र होकर रहा करते थे।

ते चाऽपि दारिद्र्योपहताः परस्परं मन्त्रं चक्रुः—अहो; धिगियं दरिद्रता।

उक्तं च—

वरं वनं व्याघ्रगजादिसेवितं, जनेन हीनं बहुकण्टकावृतम्।
तृणानि शय्या परिधानवल्कलं, न बन्धुमध्ये धनहीनजीवितम् ॥ २३ ॥

तथा च—

स्वामी द्वेष्टिसुसेवितोऽपि, सहसा प्रोज्झन्ति सद्बान्धवाः;
राजन्ते न गुणास्त्यजन्ति तनुजाः, स्फारीभवन्त्यापदः।
भार्या साधु सुवंशजाऽपि भजते, नो यान्ति मित्राणि च
न्यायारोपितविक्रमाण्यपि नृणां, येषां न हि स्याद्धनम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—व्याघ्रगजादिसेवितं, जनेन हीनं, बहुकण्टकावृतं, वनं, तृणानि, शय्या, परिधानवल्कलं वरं, बन्धुमध्ये धनहीनजीवितं न ॥ २३ ॥

व्याख्या—व्याघ्रगजादिसेवितं = शार्दूलद्विपादिसमन्वितं, जनेन हीनं = निर्जनं, बहुकण्टकावृतं = नानाकण्टकाकुलं, वनं = काननं, तत्र च तृणानि शय्या=तृणासनं, परिधानवल्कलं = वृक्षत्वक्परिधानम्, वल्कलवस्त्रधारणमित्यर्थः। वरम् = श्रेष्ठम्, बन्धुमध्ये = बान्धवमध्ये, धनहीनजीवितं = निर्धनं जीवनं ॥ २३ ॥

तथा च,

अन्वयः—हि येषां नृणां धनं न स्यात् सुसेवितोऽपि स्वामी द्वेष्टि, सद्बान्धवाः सहसा प्रोज्झन्ति, गुणाः न राजन्ते, तनुजाः त्यजन्ति, आपदः स्फारीभवन्ति, साधु सुवंशजा अपि भार्या न भजते, न्यायारोपितविक्रमाणि मित्राणि अपि यान्ति ॥ २४ ॥

व्याख्या—येषां नृणाम् = मनुष्याणां, धनं = वित्तं, सुसेवितः = सम्यगाराधितः, स्वामी=प्रभुः, द्वेष्टि=द्वेषं न करोति, सद्बान्धवाः = उत्तमबान्धवाः, प्रोज्झन्ति = त्यजन्ति, गुणाः = दयादाक्षिण्यादयः, न राजन्ते = न शोभन्ते, तनुजाः=सुताः, आपदः = विपत्तयः, स्फारीभवन्ति = विवर्धन्ते, सुवंशजापि = कुलिनापि, भार्या = स्त्री, न भजते = अनादरपूर्वकं कथंचित् सेवते, न्यायारोपितविक्रमाणि = नीतिपराणि, यान्ति = गच्छन्ति ॥ २४ ॥

दरिद्रता से पीड़ित होकर उन्होंने आपस में सलाह की—'अहो' इस दरिद्रता को धिक्कार है!

कहा भी है—व्याघ्र, गज आदि हिंस्र पशुओं से सेवित, मनुष्यों से शून्य तथा बहुत से काँटों से युक्त वन भूमि में निवास करना तथा वहाँ तृणनिर्मित शय्या पर सोना और वल्कल धारण करना भी अच्छा है परन्तु भाइयों के बीच धनहीन होकर जीवन यापन करना श्रेष्ठ नहीं है ॥ २३ ॥

और भी—

जिनके पास धन नहीं हैं, उनसे अच्छी प्रकार सेवा किये जाने पर भी स्वामी द्वेष करता है, अपने बन्धु-बान्धव सहसा उन्हें त्याग देते हैं, उनके लोकोपकार आदि अच्छे गुण भी शोभा नहीं देते। पुत्र उसे छोड़ देते हैं और विपत्तियाँ बढ़ जाती

शूरः सुरूपः सुभगश्च वाग्मी, शस्त्राणि शास्त्राणि विदांकरोतु।
अर्थं विना नैव यशश्च मानं प्राप्नोति मर्त्योऽत्र मनुष्यलोके॥ २५॥
तानीन्द्रियाण्यविकलानि, तदेव नाम, सा बुद्धिरप्रतिहिता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव बाह्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्॥ २६।

"तद्गच्छामः कुत्रचिदर्थाय।" इति संमन्त्र्य स्वदेशं पुरं च स्वसुहृत्सहि[illegible] गृहं च परित्यज्य, प्रस्थिताः। अथवा साध्विदमुच्यते—

अन्वयः—शूरः, सुरूपः, सुभगः, शस्त्राणि शास्त्राणि वाग्मी विदांकरोतु। मर्त्यः, अ[illegible] मनुष्यलोके अर्थं विना यशः, मानं च नैव प्राप्नोति॥ २५॥

व्याख्या—शूरः = वीरः, सुरूपः = रूपवान्, सुभगः=शोभायुक्तः, शस्त्राणि=शस्त्रविधा[illegible] शास्त्राणि = वेदपुराणधर्मशास्त्राणि, वाग्मी = वाक्चतुरः, विदांकरोति = जानाति, मर्त्यः = मनुष्यः, मनुष्यलोके = मर्त्यलोके, अर्थं विना = धनमन्तरेण, यशः = कीर्तिम्, मानं = सत्कारम्, नैव प्राप्नोति॥ २५॥

अन्वयः—एतद् विचित्रं तानि अविकलानि इन्द्रियाणि, तदेव नाम, सा अप्रतिहत[illegible] बुद्धिः तदेव वचनं स एव पुरुषः (किन्तु) अर्थोष्मणा विरहितः क्षणेन बाह्यः भवति॥ २६॥

व्याख्या—अविकलानि = अविकृतानि, तदेव नाम = पूर्वनामापुरुषः अप्रतिहता = अनिरुद्धा, तदेव = पूर्वतनमेव, नाम = अभिधानम्, स एव पुरुषः = पूर्वं एव मनुष्य[illegible] अर्थोष्मणा = धनस्योष्णतया, विरहितः = हीनः, बाह्यः = अन्य एव, भवति॥ २६॥

कुत्रचिदर्थाय = क्वचिद्धनोपार्जनार्थं, सम्मन्त्र्य = मनसि विचार्य, स्वसुहृत्सहितं = स्वमित्रसहितम्, बान्धवयुतं = परिवारयुतम्, प्रस्थिताः = निष्क्रान्ताः, साधु = सम्यक्।

हैं। अच्छे कुल में उत्पन्न स्त्री भी सेवा नहीं करती और न्यायमार्ग पर चलनेवाले मित्र[illegible] भी दूर हो जाते हैं॥ २४॥

पराक्रमी, रूपसम्पन्न, सुन्दर व बोलने में चतुर पुरुष शस्त्र और शास्त्र दोनों को जान लेता है, परन्तु वह इस मनुष्य लोक में बिना धन के यश और मान को न[illegible] पाता॥ २५॥

यह आश्चर्य की बात है कि यद्यपि उस धनहीन पुरुष की अविकल इन्द्रियाँ वे [illegible] हैं, उसका नाम भी वही है, वही उसकी तीक्ष्ण बुद्धि है और वही उसका वचन है पर[illegible] अर्थ की उष्णता के समाप्त होने पर वही पुरुष क्षणभर में लोगों से अलग हो जाता है अर्था[illegible] निर्धन अवस्था में उसे कोई पहचानता ही नहीं है॥ २६॥

इसलिए हमें भी धन कमाने के लिए कहीं जाना चाहिए। इस प्रकार विचार विमर्श करके अपना देश, नगर तथा मित्र और बान्धवों के सहित घर को छोड़ चले अथवा यह ठीक ही कहा जाता है—

सत्यं परित्यजति मुञ्चति बन्धुवर्गं, शीघ्रं विहाय जननीमपि जन्मभूमिम् ।
सन्त्यज्य, गच्छति विदेशमभीष्टलोकं, चिन्ताकुलीकृतमतिः पुरुषोऽत्र लोके ॥ २७ ॥

एवं क्रमेण गच्छन्तोऽवन्तीं प्राप्ताः । तत्र क्षिप्राजले कृतस्नानाः महाकालं प्रणम्य यावन्निर्गच्छन्ति, तावद् भैरवानन्दो नाम योगी संमुखो बभूव । ततस्तं ब्राह्मणोचितविधिना संभाव्य, तेनैव सह तस्य मठं जग्मुः । अथ तेन पृष्टाः—"कुतो भवन्तः समायाताः ? क्व यास्यथ ? किं प्रयोजनम् ?"

ततस्तैरभिहितम्—"वयं सिद्धियात्रिकाः, तत्र यास्यामो यत्र धनाप्तिर्मृत्युर्वा भविष्यतीत्येष निश्चयः ।" उक्तञ्च—

दुष्प्राप्याणि बहूनि च लभ्यन्ते वाञ्छितानि द्रविणानि ।
अवसरतुलिताभिरलं तनुभिः साहसिकपुरुषाणाम् ॥ २८ ॥

अन्वयः—अत्र लोके चिन्ताकुलीकृतमतिः पुरुषः सत्यं परित्यजति, बन्धुवर्गं मुञ्चति, जननीं जन्मभूमिम् अपि विहाय अभीष्टलोकं सन्त्यज्य, शीघ्रम् विदेशं गच्छति ॥ २७ ॥

व्याख्या—चिन्ताकुलीकृतमतिः = चिन्ताव्याकुलचित्तः, सत्यं परित्यजति = असत्यं भाषते, बन्धुवर्गं मुञ्चति = बान्धवजनात्पृथग्भवति । अभीष्टलोकं = स्वप्रियस्थानं, सन्त्यज्य= दूरीकृत्य, विदेशं गच्छति = परदेशं प्रतिष्ठते ॥ २७ ॥

एवमिति । एवम् = इत्थम्, अवन्तीम् = उज्जयिनीम् , गच्छन्तः = परिभ्रमन्तः, क्षिप्राजले = क्षिप्रानद्याम् , महाकालं = महाकालाख्यं शिवलिङ्गम् , योगी = साधकः, ब्राह्मणोचितविधिना = ब्राह्मणेभ्यो यथा नियमस्तथा विधानेन, संभाव्य = सम्मान्य, तेनैव = भैरवानन्देन, ते = विप्रपुत्राः, सिद्धियात्रिकाः = स्वकार्यसिद्धये गच्छन्तः, । यास्यामः = गमिष्यामः । धनाप्तिः = धनलाभः । मृत्युः = निधनं, भविष्यतीत्येष निश्चयः=संकल्पः ॥

अन्वयः—साहसिकपुरुषाणाम् अवसरतुलिताभिः, तनुभिः वाञ्छितानि द्रविणानि बहूनि दुष्प्राप्याणि च लभ्यन्ते ॥ २८ ॥

इस संसार में अनेक प्रकार की चिन्ताओं से व्याकुल होकर पुरुष सत्य को छोड़ देता है, बन्धुजनों को त्याग देता है, तथा शीघ्र ही अपनी जननी तथा जन्मभूमि को भी छोड़ देता है और अपने अभीष्ट लोक को त्यागकर विदेश को चला जाता है ॥ २७ ॥

इस प्रकार क्रम से जाते हुए वे उज्जयिनी में पहुँचे । वहाँ क्षिप्रा नदी के जल में स्नान किया और महाकाल के दर्शन करके जैसे ही बाहर निकले, उन्हें भैरवानन्द नाम का एक योगी दिखायी पड़ा । वे ब्राह्मणोचित विधि से उसका आदर सत्कार कर उसी के साथ उसके मठ में गये ।

अनन्तर योगी ने उनसे पूछा—"आप लोग कहाँ से आ रहे हैं ? कहाँ जायेंगे और आपका क्या प्रयोजन है ? तदनन्तर उन्होंने उत्तर दिया—हम लोग कार्य सिद्धि के लिए यात्री बने हुए हैं ? हम लोग वहाँ जाएँगे जहाँ धन की ही प्राप्ति होगी अथवा मृत्यु ही होगी । यही हमारा दृढ़ निश्चय है । कहा भी है—

अवसर के अनुकूल कार्य करनेवाले शरीर के द्वारा साहसी पुरुषों को बहुत सी दुष्प्राप्य और अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है ॥ २९ ॥

तथा च—

पतति कदाचिन्नभसः खाते, पातालतोऽपि जलमेति ।
दैवमचिन्त्यं बलवद्, बलवान्ननु पुरुषकारोऽपि ॥ २९ ॥
अभिमतसिद्धिरशेषा भवति हि पुरुषस्य पुरुषकारेण ।
दैवमिति यदपि कथयसि पुरुषगुणः सोऽप्यदृष्टाख्यः ॥ ३० ॥
ह्ययमतुलं गुरु लोकात्तृणमिव तुलयन्ति साधु साहसिकाः ।
प्राणानद्भुतमेतच्चरितं चरितं ह्युदाराणाम् ॥ ३१ ॥

व्याख्या—साहसिकपुरुषाणां = उद्योगिनां, अवसरतुलिताभिः = योग्ये समये प्रे
ताभिः, परीक्षिताभिः पूर्णरुपेण कार्यकारिणीभिरिति यावत्, तनुभिः = शरीरैः वाञ्छि
तानि = इच्छानुरुपाणि, द्रविणानि=धनानि, दुष्प्राप्याणि = दुर्लभानि, लभ्यन्ते
प्राप्यन्ते ॥ २८ ॥

अन्वयः—अचिन्त्यं दैवं बलवत्, ननु पुरुषकारोऽपि बलवान् । कदाचिद्
नभसः खाते पतति, पातालतोऽपि जलम् एति ॥ २९ ॥

व्याख्या—दैवं = भाग्यम्, पुरुषकारोऽपि = पुरुषार्थोऽपि, बलवान् = शक्तिमा
भवति, कदाचित् = कस्मिंश्चित्काले, जलं=सलिलं, नभसः = आकाशात्, खाते=जलाश
पातालतोऽपि = भूगर्भादपि, एति = आगच्छति ॥ २९ ॥

अन्वयः—पुरुषकारेण, हि अशेषा, पुरुषस्य, अभिमतसिद्धिः, भवति यदपि, दैवमि
कथयसि, सोऽपि अदृष्टाख्यः पुरुषगुणः ॥ ३० ॥

व्याख्या—पुरुषकारेण = पौरुषेण, अशेषा = निःशेषा, पुरुषस्य = मनुष्यस्य, अभि
मतसिद्धिः, = वाञ्छितार्थप्राप्तिः, दैवम्=भाग्यम्, अदृष्टाख्यः=अदृष्टनामधारी, पुरुषगुणः
पुरुषस्यैव प्रयत्नोऽस्तीत्यर्थः ॥ ३० ॥

अन्वयः—साहसिकाः प्राणान् तृणमिव साधु तुलयन्ति, एतदद्भूतं चरितम् हि उद
राणां चरितं च भयं लोकात् गुरु अतुलं च भवति ॥ ३१ ॥

व्याख्या—साहसिकाः = उद्योगिनः पुरुषाः, प्राणान् = जीवनं, तृणमिव = शष्पमि
मत्वा, अद्भुतमेतच्चरितं = विचित्रमिदमाचरणम्, चरितं = प्रदर्शितम्, भयं = भी
अतुलम् = अत्यधिकम् ॥ ३१ ॥

और भी—अचिन्तनीय दैव ही बलवान् होता है, पुरुषार्थ बलवान् नहीं हो
ऐसी बात नहीं है (अर्थात् कभी पुरुषार्थ भी बलवान् होता है) क्योंकि कभी
आकाश से जलाशय में गिरता है तो कभी पाताल से भी निकलता है ॥ २८ ॥

पुरुषार्थ से मनुष्य को सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है। जिसको भाग्य क
हैं, वह भी तो अदृष्ट नामक पुरुष का एक गुण ही है ॥ ३० ॥

साहसी पुरुष अपने प्राणों को तृण के समान समझते हैं और गुरुजनों से अत्य
भय मानते हैं, ऐसा उदार व्यक्तियों का चरित्र कहा गया है ॥ ३१ ॥

क्लेशस्याऽङ्गमदत्त्वा सुखमेव सुखानि नेह लभ्यन्ते ।
मधुभिन्मथनायस्तैराश्लिष्यति वाहुभिर्लक्ष्मीम् ॥ ३२ ॥
तस्य कथं न चला स्यात् पत्नी विष्णोर्नृसिंहकस्याऽपि ।
मासांश्चतुरो निद्रां यः सेवति जलगतः सततम् ॥ ३३ ॥
दुरधिगमः परभागो यावत्पुरुषेण साहसं न कृतम् ।
जयति तुलामधिरूढो भास्वानिह जलदपटलानि ॥ ३४ ॥
तत्कथ्यतामस्माकं कश्चिद् धनोपायो विवरप्रदेशशाकिनीसाधनश्मशान-

अन्वयः—इह क्लेशस्य अङ्गम् अदत्त्वा सुखमेव सुखानि न लभ्यन्ते मधुभित् मथनायस्तैः वाहुभिः लक्ष्मीम् आश्लिष्यति ॥ ३२ ॥

व्याख्या—इह = संसारे, क्लेशस्य = कष्टस्य, अङ्गं = शरीरम्, अदत्त्वा = असमर्प्य, सुखमेव = सुखपूर्वकमेव न लभ्यन्ते । मधुभित् = मधुविनाशको विष्णुः, मथनायस्तैः = समथनश्रान्तैः वाहुभिः = करैः, लक्ष्मीं = श्रियम् , आश्लिष्यति = आलिङ्गति ॥ ३२ ॥

अन्वयः—यः जलगतः चतुरो मासान् सततं निद्रां सेवति नृसिंहकस्य अपि तस्य विष्णोः पत्नी चला कथं न स्यात् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—जलगतः = जलमध्ये स्थितः सन् , चतुरो मासान् = मासचतुष्टयं यावत्, सततं = नित्यं, निद्रां सेवति = निद्राति, नृसिंहकस्य = पुरुषश्रेष्ठस्यापीति ध्वनिः, विष्णोः = नारायणस्य, पत्नी = लक्ष्मी, चला = चञ्चला, कथं न स्यात् = कुतो न भवेत् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—यावत्पुरुषेण साहसं न कृतं (तावत्) परभागो दुरधिगमः (भवति) इह भास्वान् तुलामधिरुढः जलदपटलानि जयति ॥ ३४ ॥

व्याख्या—यावत् = यावत्कालपर्यन्तं, साहसं न कृतं = पौरुषं न विहितं, परभागः= विजयः, दुरधिगमः = दुःसाध्यः, तुलामधिरुढः=तुलाराशिं गतः, जलदपटलानि = मेघमण्डलानि, जयति = पराजयत इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

तदिति । धनोपायः = धनलाभोपायः, विवरप्रदेशः = भूगर्भप्रवेशः । शाकिनी-साधनं = यक्षिण्यादिसाधनोपायं, श्मशानसेवनं = श्मशानोपासनं, महामांसविक्रयः =

शरीर को कष्ट दिये विना अनायास ही सुख प्राप्त नहीं हो जाता । मधु नामक दैत्य के घाती भगवान् विष्णु ने भी समुद्र मन्थन से थके हाथों से ही लक्ष्मी का आलिङ्गन किया था ॥ ३२ ॥

नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णु की भी पत्नी चञ्चला क्यों न हो ? जो कि निरन्तर चार मास तक जल में ही निद्रा ग्रहण करते हैं ॥ ३३ ॥

मनुष्य जब तक साहस नहीं करता तब तक उसके गुण का उत्कर्ष नहीं होता । सूर्य जब तुलाराशि पर आरूढ़ होता है, तभी वह मेघों पर विजय पाता है ॥ ३४ ॥

अतः आप हमें धन प्राप्ति के लिए कोई उपाय बताइये । हम लोगों को भूगर्भ प्रवेश, शाकिनी साधन, श्मशान साधन, नरमांस-विक्रय और सिद्ध घुटिका बनाना—

सेवनमहामांसविक्रयसाधकवर्तिप्रभृतीनामेकतम इति। अद्भुतशक्तिर्भवान् श्रूयते वयमप्यतिसाहसिकाः उक्तञ्च—

महान्त एव महतामर्थं साधयितुं क्षमाः।
ऋते समुद्रादन्यः को बिभर्ति वडवाऽनलम्? ॥ ३५ ॥

भैरवानन्दोऽपि तेषां सिद्ध्यर्थं बहूपायं सिद्धवर्तिचतुष्टयं कृत्वाऽर्पयत् आह च—"गम्यतां हिमालयदिशि। तत्र संप्राप्तानां यत्र वर्तिः पतिष्यति तत्र निधानमसन्दिग्धं प्राप्स्यथ। तत्र स्थानं खनित्वा निधिं गृहीत्वा व्याघुट्यताम्।"

तथाऽनुष्ठिते तेषां गच्छतामेकतमस्य हस्ताद्वर्तिर्निपपात। अथाऽसौ याव प्रदेशं खनति, तावत्ताम्रमयी भूमिः। ततस्तेनाऽभिहितम्—"अहो, गृह्यतां स्वेच्छया ताम्रम्।" अन्ये प्रोचुः—"भो मूढ! किमनेन क्रियते यत् प्रभूतमपि

गोमनुष्यमांसविक्रयः, साधकवर्तिः = कार्यसाधकरूपा, अद्भुतशक्तिः = आश्चर्यकारि सामर्थ्यः।

अन्वयः—महान्तः, एव, महताम् अर्थं साधयितुं क्षमाः। समुद्रात्, ऋते, अन्यः क वडवानलं बिभर्ति ॥ ३४ ॥

व्याख्या—महान्तः = महापुरुषाः, महताम् = श्रेष्ठजनानाम्, अर्थं = कार्यं, क्षमाः समर्थाः, ऋते समुद्रात् = समुद्रं विहाय, वडवानलं = वडवाग्निं, बिभर्ति=धारयति ॥३४॥

भैरवेति। तेषां = विप्रपुत्राणां, सिद्ध्यर्थं = कार्यसम्पादनार्थं, बहूपायं = नानाकार साधनक्षम, सिद्धवर्तिचतुष्टयं = सिद्धगुटिकाश्चतस्रः, हिमालयदिशि = उत्तरस्यां दिशि संप्राप्तानां = गतानां, निधानं = भूमिगतं धनं, असंदिग्धम् = निःसंशयं, व्याघुट्यताम् = प्रत्यागम्यताम्।

तथेति। तथाऽनुष्ठिते = तथा कृते सति। ताम्रमयी भूमिः = ताम्रखनिः, प्रभूतमपि

इन में से कोई एक साधन बताइये। आप अद्भुत शक्तिसम्पन्न सुने जाते हैं और हम लो लोग भी बहुत साहसी हैं। कहा भी है—

महान् पुरुष ही महान् व्यक्तियों के प्रयोजन को साधने में समर्थ होते हैं। समु के अतिरिक्त दूसरा कौन वडवानल को धारण कर सकता है? ॥ ३५ ॥

भैरवानन्द ने भी उनकी कार्य सिद्धि के लिए बहुत उपाय करके चार सिद्धवर्ति बनाकर दे दी और उनसे कहा—आप लोग हिमालय की ओर जाओ। वहाँ जा पर जहाँ पर बत्ती गिरेगी वहाँ तुम्हें अवश्य ही धन प्राप्त होगा। उस स्थान को खो कर धन को लेकर पुनः लौट आना ॥ ३५ ॥

सिद्धवर्तिकाओं को लेकर वे हिमालय की ओर चल पड़े। जाते हुए रास्ते में ए के हाथ से बत्ती गिर पड़ी। तब उसने जमीन खोदना प्रारम्भ किया तो उसने व ताँबे की जमीन देखी। तब उसने अन्य साथियों से कहा—भाइयों, यथेष्ट ताँबा या

दारिद्र्यं न नाशयति। तदुत्तिष्ठ, अग्रतो गच्छामः।" सोऽब्रवीत्—"यान्तु भवन्तः। नाऽहमग्रे यास्यामि।" एवमभिधाय ताम्रं यथेच्छया गृहीत्वा प्रथमो निवृत्तः।

ते त्रयोऽपि अग्रे प्रस्थिताः। अथ किञ्चिन्मात्रं गतस्याऽग्रेसरस्य वर्तिर्निपपात। सोऽपि यावत्खनितुमारब्धस्तावद् रूप्यमयी क्षितिः। ततः प्रहर्षितः प्राह—यत्—"भो भो, गृह्यतां यथेच्छया रूप्यम्। नाऽग्रे गन्तव्यम्।"

तावूचतुः—"भोः, पृष्ठतस्ताम्रमयी भूमिः, अग्रतो रूप्यमयी। तन्नूनमग्रे सुवर्णमयी भविष्यति। किंचाऽनेन प्रभूतेनाऽपि दारिद्र्यनाशो न भवति। तदावामग्रे यास्यावः।" एवमुक्त्वा द्वावप्यग्रे प्रस्थितौ। सोऽपि स्वशक्त्या रूप्यमादाय निवृत्तः।

अथ तयोरपि गच्छतोरेकस्याऽग्रे वर्तिः पपात। सोऽपि प्रहृष्टो यावत्खनति,

---

अधिकमपि, अग्रेसरस्य = पुरस्सरस्य, रूप्यमयी = रजतमयी, क्षितिः = भूमिः, पृष्ठतः = पश्चात्, निवृत्तः = परावृतः, प्रभूतेन = यथेष्टेन, दारिद्र्यनाशः = दरिद्रताभावः।

अथेति। प्रहृष्टः = प्रसन्नः, वेत्सि = न जानासि, प्राक् = आदौ, भारभूतेन = भारस्वरूपेण, प्रतिपालयिष्यामि = प्रतीक्ष्ये, ग्रीष्मार्कप्रतापसन्तप्ततनुः = ग्रीष्मतापात्तप्त-

---

से ले लो। उसकी बात सुनकर दूसरों ने कहा—मूर्ख इसे लेकर हम क्या करेंगे। यह अधिक होने पर भी हमारी दरिद्रता को दूर नहीं करेगी। इसलिए चलो, आगे चलते हैं। उसने कहा—आप लोग जाइए। मैं आगे नहीं जाऊँगा। इस प्रकार कहकर प्रथम पुरुष इच्छानुसार ताँबे को लेकर लौट गया।

उसके लौट जाने पर वे तीनों आगे चल पड़े। तदनन्तर कुछ दूर जाने पर आगे चलनेवाले के हाथ से वर्तिका गिर पड़ी। उसने भी वैसे ही उस स्थान पर खोदना प्रारम्भ कर दिया तो उसने चाँदी से भरी पृथ्वी को देखा। तब वह प्रसन्न होकर बोला—अरे भाइयों! इच्छानुसार यहाँ से चाँदी ले लो। अब आगे नहीं जाना चाहिए।

शेष दोनों ने कहा—अरे देखो, पीछे ताँबे की भूमि निकली थी और यहाँ चाँदी की भूमि मिली है। अतः निश्चय ही आगे सोने की भूमि होगी और इस बहुत सी चाँदी के होने से भी हमारी दरिद्रता का नाश नहीं होगा। हम दोनों तो आगे जायेंगे। ऐसा कहकर वे दोनों आगे चल पड़े और वह भी अपनी शक्ति के अनुसार चाँदी को लेकर लौट गया।

आगे चलकर उन दोनों में से आगे वाले की वर्तिका भी गिरी। वह भी प्रसन्न होकर उस स्थान को खोदता है, तो सुवर्णमयी भूमि को देखकर दूसरे साथी से बोला—भाई, तुम भी स्वेच्छापूर्वक सुवर्ण ग्रहण कर लो। सुवर्ण से और कुछ भी उत्तम नहीं होगा। दूसरा बोला—अरे मूर्ख, तुम कुछ भी नहीं जानते हो। पहले ताँबा, फिर चाँदी और फिर सुवर्ण निकला है। अतः निश्चय ही इसके आगे उत्तम रत्न होंगे जिनमें से एक

तावत्सुवर्णभूमिं दृष्ट्वा द्वितीयं प्राह—"भोः, गृह्यतां स्वेच्छया सुवर्णम्। सुवर्णा-दन्यन्न किञ्चिदुत्तमं भविष्यति।"

स प्राह—"मूढ! न किञ्चिद् वेत्सि। प्राक्ताम्रं, ततो रूप्यं, ततः सुवर्णम्। तन्नूनमतः परं रत्नानि भविष्यन्ति, येषामेकतमेनाऽपि दारिद्र्यनाशो भवति। तदुत्तिष्ठ, अग्रे गच्छावः। किमनेन भारभूतेनाऽपि प्रभूतेन?"

स आह—"गच्छतु भवान्। अहमत्र स्थितस्त्वां प्रतिपालयिष्यामि।" तथाऽनुष्ठिते, सोऽपि गच्छन्नेकाकी, ग्रीष्माऽर्कप्रतापसन्तप्ततनुः पिपासाकुलितः सिद्धिमार्गच्युत इतश्चेतश्च बभ्राम।

अथ भ्राम्यन्, स्थलोपरि पुरुषमेकं रुधिरप्लावितगात्रं भ्रमच्चक्रमस्तक-मपश्यत्। ततो द्रुततरं गत्वा तमवोचत्—"भोः, को भवान्? किमेवं चक्रेण भ्रमता शिरसि तिष्ठसि? तत्कथय मे यदि कुत्रचिज्जलमस्ति।"

एवं तस्य प्रवदतस्तच्चक्रं तत्क्षणात्तस्य शिरसो ब्राह्मणमस्तके चटितम्।

स आह—"भद्र! किमेतत्?"

स आह—"ममाऽप्येवमेतच्छिरसि चटितम्?"

कायः, सिद्धिमार्गच्युतः = गन्तव्यस्थानात्स्खलितः, स्थलोपरि = समतलप्रदेशे, भ्रमच्चक्र-मस्तकं = भ्रमच्चक्रं मस्तकं यस्य तम्, द्रुततरं = शीघ्रातिशीघ्रम्।

एवमिति। प्रवदतः = वार्ता कुर्वतः, चटितम् = आरुरोह, धृतसिद्धिवर्तिः = धृता सिद्धिवर्तिर्येन सः, कालसङ्ख्यां = समयगणनां, मस्तकधृतचक्रः = चक्रयुक्तशिरा, धनदेन =

होने पर ही दारिद्र्य का नाश सम्भव है। इसलिए उठो, आगे चलते हैं। 'इस बहुत भारी बोझ को लेकर भी क्या होगा?'।

उसने कहा—तुम जाओ, मैं यहीं पर खड़ा हुआ तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। उसके ऐसा कहने पर वह अकेला ही आगे चल पड़ा और ग्रीष्मऋतु के ताप से सन्तप्त होकर प्यास से व्याकुल हुआ कार्यसिद्धि के मार्ग से अलग होकर इधर-उधर भटकने लगा। तब घूमते हुए उसने एक पुरुष को देखा जिसका शरीर खून से लथपथ और माथे पर चक्र घूम रहा था। उसे देखकर वह शीघ्र ही उसके समीप पहुँचा और बोला—हे भाई, आप कौन है? इस प्रकार आपके माथे पर यह चक्र क्यों घूम रहा है, यदि कहीं जल हो तो मुझे बताओ'।

इस प्रकार वह कह रहा था कि वह चक्र उसी क्षण उसके मस्तक से उस ब्राह्मण के मस्तक पर चढ़ गया। वह बोला—भद्र, ऐसा क्यों? उसने उत्तर दिया—मेरे शिर पर भी यह वैसे हीं चढ़ गया था'।

ब्राह्मण ने कहा—मुझे यह बताओ, यह कब उतरेगा। इससे मुझे बहुत पीड़ा हो रही है?

उसने उत्तर दिया—जब तुम्हारे समान कोई सिद्धिवर्ति को लेकर आया हुआ पुरुष तुम्हारे साथ वार्तालाप करेगा, तब उसके मस्तक पर चढ़ जाएगा।

स आह—"तत्कथय कदैतदुत्तरिष्यति? महती मे वेदना वर्तते।"

स आह—"यदा त्वमिव कश्चिद् धृतसिद्धवर्तिरेवमागत्य, त्वामालापयिष्यति तदा तस्य मस्तकं चटिष्यति।"

स आह—"कियान्कालस्तवैवं स्थितस्य?"

स आह—"साम्प्रतं को राजा धरणीतले?"

स आह—"वीणावत्सराजः।"

स आह—"अहं तावत्कालसङ्ख्यां न जानामि। परं यदा रामो राजासीत्तदाऽहं दारिद्र्योपहतः सिद्धवर्तिमादायानेन पथा समायातः। ततो मयाऽन्यो नरो मस्तकधृतचक्रो दृष्टः, पृष्टश्च। ततश्चैतज्जातम्।"

स आह—"भद्र! कथं तवैवं स्थितस्य भोजनजलप्राप्तिरासीत्?"

स आह—"भद्र! धनदेन निधानहरणभयात्सिद्धानामेतच्चक्रपतनरूपं भयं दर्शितम् तेन कश्चिदपि नागच्छति। यदि कश्चिदायाति, स क्षुत्पिपासानिद्रारहितो, जरामरणवर्जितः केवलमेवं वेदनामनुभवति इति। तदाज्ञापय मां स्वगृहाय।" इत्युक्त्वा गतः।

तस्मिंश्चिरयति स सुवर्णसिद्धिस्तस्याऽन्वेषणपरस्तत्पदपङ्क्त्या यावत् किञ्चिद् वनान्तरमागच्छति, तावद्रुधिरप्लावितशरीरस्तीक्ष्णचक्रेण मस्तके भ्रमता सवेदनः

कुबेरेण, निधानहरणभयात् = निधिनाशभीतिहेतोः, जरामरणवर्जितः = वृद्धावस्थामृत्युहीनः, वेदनामनुभवति = कष्टमनुभवति, स्वगृहाय = निजगृहं गमनाय।

चिरयति = विलम्बं कुर्वति, अन्वेषणपरः = सन्धानतत्परः, तत्पदपङ्क्त्या = तत्प-

---

ब्राह्मण बोला—आपको ऐसे रहते हुए कितना काल हो गया। उसने पूछा—इस समय पृथ्वी पर कौन राजा है?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया—'वीणा वत्सराज'। वह पुरुष बोला—मैं कालगणना तो नहीं जानता हूँ। परन्तु जब राम राजा थे, उस समय मैं दरिद्रता से व्याकुल होकर सिद्धिवर्ति को लेकर इस मार्ग से आया था। उस समय मैंने यहाँ एक दूसरे पुरुष को देखा जिसके मस्तक पर यह चक्र था और जब मैंने उससे पूछा तो मेरी भी ऐसी दशा हो गयी।

ब्राह्मण ने कहा—हे भद्र! तुम्हें इस प्रकार रहते हुए भोजन तथा जल की प्राप्ति कैसे होती थी? वह बोला—भद्र, कुबेर ने खजाने के चुराने के भय से सिद्धों को यह चक्रपतनरूप भय दिखाया है इस कारण कोई आता नहीं है। यदि कोई आता है तो वह भूख, प्यास, निद्रा आदि से रहित एवं जरा-मरण से वर्जित होकर केवल पीडा का ही अनुभव करता है। अब मुझे घर जाने के लिए आज्ञा दो। ऐसा कहकर वह चला गया।

तदनन्तर उसको देर हो जाने पर वह सुवर्णसिद्धि उसको खोजता हुआ

क्षणन्नुपविष्टस्तिष्ठतीति ददर्श। ततः तत्समीपवर्तिना भूत्वा, सर्वार्थं पृष्ट—"भद्र ! किमेतत् ?"

स आह—"विधिनियोगः।"

स आह—"कथं तत् ? कथय कारणमेतस्य।"

सोऽपि तेन पृष्टः, सर्वं चक्रवृत्तान्तमकथयत्। तत् श्रुत्वाऽसौ तं विगर्हयन्निद-माह—"भो ! निषिद्धस्त्वं मयाऽनेकशो न शृणोषि मे वाक्यम्। तत्किं क्रियते ! विद्यावानपि, कुलीनोऽपि, बुद्धिरहितः। अथवा साध्विदमुच्यते—

वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति, यथा ते सिंहकारकाः॥ ३६॥

चक्रधर आह—"कथमेतत् ?" सुवर्णसिद्धिराह—

दचिह्नेन, सवेदनः = कष्टयुक्तः, क्वणन् = रुदन्, तत्समीपवर्तिनो भूत्वा = तस्य सामीप्यं प्राप्य, सवाष्पं = अश्रुसहितम्, विधिनियोगः = भाग्यविडम्बितम्, विगर्हयन् = निन्दयन्, निषिद्धः = प्रतिषिद्धः।

अन्वयः—बुद्धिः वरं सा विद्या न, विद्याया बुद्धिः उत्तमाः, बुद्धिहीनाः विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः॥

व्याख्या—बुद्धिः = प्रज्ञा, वरं = सम्यक्, विद्यायाः = विद्यापेक्षयेति यावत्, बुद्धिविहीनाः = बुद्ध्यावियुता जनाः, विनश्यन्ति = विनष्टा भवन्ति, ते = वक्ष्यमाणाः सिंहकारकाः = सिंहप्रणेतारः।

उसके पाद चिह्नों से जब किसी वन के मध्य पहुँचा तो उसने देखा कि उसका शरीर रुधिर से आप्लावित है एवं उसके मस्तक पर तीक्ष्ण चक्र घूम रहा है, वह पीडा का अनुभव करते हुए विलाप करते हुए बैठा हुआ है। वह उसके समीप जाकर आँसू गिराते हुए बोला—भद्र, यह क्या हो गया ? वह बोला—मित्र, यह सब भाग्य का खेल है। उसने पूछा—यह सब कैसे हुआ, इसका कारण बताओ।

सुवर्णसिद्धि के ऐसा पूछने पर उस यथार्घटित समस्त चक्रवृत्तान्त को कह सुनाया। उसे सुनकर वह उसकी निन्दा करते हुए कहने लगा—अरे मूर्ख, मैंने तुम्हें बहुत बार मना किया, परन्तु तुमने मेरी एक बात न सुनी, तब क्या किया जाय। तुम विद्वान् और कुलीन होते हुए भी बुद्धिहीन हो। अथवा ठीक ही कहा जाता है—

बुद्धि ही श्रेष्ठ है न कि विद्या। विद्या की अपेक्षा बुद्धि उत्तम है। बुद्धिहीन मनुष्य वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे कि सिंह को जीवित करनेवाले ब्राह्मण॥ ३६॥

चक्रधर ने पूछा—यह कैसे ? सुवर्णसिद्धि ने कहा—

३. सिंहकारकमूर्खब्राह्मण-कथा

"कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणपुत्राः परस्परं मित्रभावमुपगता वसन्ति स्म। तेषां त्रयः शास्त्रपारङ्गताः, परन्तु बुद्धिरहिताः। एकस्तु बुद्धिमान् केवलं शास्त्रपराङ्मुखः। अथ तैः कदाचिन्मित्रैर्मन्त्रितं—"को गुणो विद्यायाः, येन देशान्तरं गत्वा भूपतीन् परितोष्याऽर्थोपार्जना न क्रियते। तत्पूर्वदेशं गच्छामः।"

तथाऽनुष्ठिते किञ्चिन्मार्गं गत्वा, तेषां ज्येष्ठतरः प्राह—"अहो, अस्माकमेकश्चतुर्थो मूढः केवलं बुद्धिमान्। न च राजप्रतिग्रहो बुद्ध्या लभ्यते, विद्यां विना। तन्नास्मै स्वोपार्जितं दास्यामि। तद् गच्छतु गृहम्।" ततो द्वितीयेनाऽभिहितं—"भोः, सुबुद्धे! गच्छ त्वं स्वगृहं, यतस्ते विद्या नास्ति।" ततस्तृतीयेनाऽभिहितम्—"अहो, न युज्यते एवं कर्तुम्, यतो वयं बाल्यात्प्रभृत्येकत्र क्रीडिताः। तदागच्छतु महाऽनुभावोऽस्मदुपार्जितवित्तस्य समभागी भविष्यतीति। उक्तञ्च—

कस्मिंश्चिदिति। अधिष्ठाने = नगरे, शास्त्रपारङ्गताः शास्त्रमर्मज्ञाः, शास्त्रपराङ्मुखः = शास्त्रविमुखः, मन्त्रितं = विमर्शः कृतः, भूपतीन् = भूपान्, गुणः = वैशिष्ट्यं, अर्थोपार्जना= धनोपार्जना, न क्रियते = न विधायते।

तथेति। तथाऽनुष्ठिते = तथा कृते सति, राजप्रतिग्रहः = राज्ञादत्तं धनादिकम्, स्वोपार्जितं = स्वार्जितं, बाल्यात्प्रभृति=बाल्यकालादारभ्य, समभागी=समानप्राप्तिशाली।

---

३. सिंहकारक मूर्ख ब्राह्मणों की कथा

किसी स्थान पर चार ब्राह्मण पुत्र परस्पर मैत्रीभाव रखते हुए निवास कर रहे थे। उनमें तीन शास्त्रों में पारङ्गत थे, परन्तु बुद्धिशून्य थे। केवल एक ही बुद्धिमान् था परन्तु वह शास्त्र से विमुख था। अनन्तर किसी दिन उन मित्रों ने आपस में विचार-विमर्श किया—'विद्या का क्या गुण (लाभ) है ? यदि देशान्तर में जाकर उससे राजाओं को सन्तुष्ट करके धन इकट्ठा न किया जाय। तो चलो पूर्व की ओर जाते हैं।

इस प्रकार निश्चयकर कुछ दूर तक जाकर उनमें जो ज्येष्ठ था, वह बोला—अहो, हममें यह चौथा मूर्ख (शास्त्र विमुख) है, केवल बुद्धिमान् है और केवल बुद्धि के द्वारा राजाओं से दान प्राप्त नहीं हो सकता। मैं इस मूर्ख को अपने कमाये हुए धन को नहीं दूँगा। तुम घर चले जाओ'।

उसके बाद दूसरे ने भी कहा—'हे सुबुद्धि, तू अपने घर जा, क्योंकि तेरे पास विद्या नहीं है। तब तीसरा बोला—अहो, ऐसा करना उचित नहीं है, क्योंकि हम बचपन से ही एक साथ खेले हैं। इसलिए आ जाओ तुम मेरे कमाये हुए धन के समभागी होओगे। कहा भी है—

किं तया क्रियते लक्ष्म्या, या वधूरिव केवला।
या न वेश्येव सामान्या पथिकैरुपभुज्यते ॥ ३७ ॥

तथा च—अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ ३८ ॥

तदागच्छत्वेषोऽपि इति। तथाऽनुष्ठिते तैर्मार्गाश्रितैरटव्यां कतिचिदस्थीनि दृष्टानि। ततश्चैकेनाऽभिहितम्—"अहो, अद्य विद्याप्रत्ययः क्रियते। किञ्चिदेतत्सत्त्वं मृतं तिष्ठति। तद् विद्याप्रभावेण जीवनसहितं कुर्मः। अहमस्थिसञ्चयं करोमि।" ततश्च तेनौत्सुक्यादस्थिसञ्चयः कृतः। द्वितीयेन चर्ममांसरुधिरं संयोजितम्। तृतीयोऽपि यावज्जीवनं सञ्चारयति, तावत्सुबुद्धिना निषिद्धः—"भोः तिष्ठतु भवान्। एष सिंहो

अन्वयः—या सामान्या वेश्या इव पथिकैः न उपभुज्यते, या केवला वधूरिव, तया लक्ष्म्या किं क्रियते ॥ ३६ ॥

व्याख्या—सामान्या वेश्येव = साधारणगणिकेव, पथिकैः = पान्थैः, केवला = एका, वधूरिव = कुलभार्येव, तया = असामान्या, लक्ष्म्याः = श्रियाः, किं क्रियते = किं प्रयोजनमस्ति ॥ ३६ ॥

तथा च—

अन्वयः—अयं निजः परो वा इति गणना लघुचेतसां (भवति), उदारचरितानां तु वसुधा एव कुटुम्बकं (भवति) ॥ ३७ ॥

व्याख्या—अयं निजः परो वा = अयं स्वकीयः परकीयो वा, गणना = विचारः, लघुचेतसां = क्षुद्रात्मनां, उदारचरितानाम्=उदारचित्तानां तु, वसुधैव=विश्वमेव, कुटुम्बकं= परिवारोऽस्ति ॥ ३७ ॥

तथेति। मार्गाश्रितैः = पथि गच्छद्भिः, अस्थीनि = कुल्यानि, विद्याप्रत्ययः = विद्यापरीक्षा, सत्त्वं = जीवः, औत्सुक्यात् = कौतुकात्, संयोजितम्=समायोजितम् , सुबुद्धिना= चतुर्थेनानधीतशास्त्रेण, निषिद्धः = निवारितः, निष्पाद्यते=विनिर्मीयते, व्यापादयिष्यति =

उस लक्ष्मी से लाभ ही क्या है, जो सामान्य वेश्या के समान पथिकों के द्वारा उपभोग नहीं की जाती और जो केवल कुलवधू के समान एक ही पुरुष के द्वारा उपभोग में लायी जाती है ॥ ३७ ॥

तथा—

यह अपना है, यह पराया है—इस प्रकार का विचार क्षुद्र मनवाले ही करते हैं। उदार चरित व्यक्तियों के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी ही अपना परिवार होती है ॥ ३८ ॥

तो ठीक है वह भी आवें। ऐसा निश्चय करके मार्ग में जाते हुए उन लोगों ने जङ्गल में कुछ अस्थियों को देखा। तब एक ने कहा—आज विद्या की परीक्षा की जाय। यह कोई मृत प्राणी है। तो हम लोग इसे अपनी विद्या के प्रभाव से जीवित कर दें। मैं अस्थियों को एकत्रित करता हूँ'। तब उसने उत्सुकता से अस्थियों को संचित किया। दूसरे ने चर्म, मांस और रुधिर को संयोजित किया। इसके बाद जब तीसरा उसमें प्राण संचार करने लगा,

निष्पाद्यते। यद्येनं सजीवं करिष्यसि ततः सर्वानपि व्यापादयिष्यति।" इति तेनाऽभिहितः स आह—"धिङ्मूर्ख! नाऽहं विद्याया विफलतां करोमि।" ततस्तेनाऽभिहितम्—"तर्हि प्रतीक्षस्व क्षणं, यावदहं वृक्षमारोहामि।"

तथाऽनुष्ठिते, यावत्सजीवः कृतस्तावत्ते त्रयोऽपि सिंहेनोत्थाय व्यापादिताः। स च पुनर्वृक्षादवतीर्य, गृहं गतः।" अतोऽहं ब्रवीमि—

वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः॥ ३९॥ इति।

अतः परमुक्तं च सुवर्णसिद्धिना—

अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिताः।
सर्वे ते हास्यतां यान्ति, यथा ते मूर्खपण्डिताः॥ ४०॥

चक्रधर आह—"कथमेतत्?" सोऽब्रवीत्—

मारयिष्यति। इति = इत्थं, तेन = सुबुद्धिना, अभिहितः = कथितः। विफलतां=निष्फलतां, प्रतीक्षस्व = विलम्बं कुरु। सजीवः कृतः = प्राणसञ्चारेण नियोजितः। तावत् = तस्मिन् काले, उत्थाय = जीवितो भूत्वा, व्यापादिताः = मारिताः।

अन्वयः—शास्त्रेषु, कुशला अपि, लोकाचारविवर्जिताः ते सर्वेः हास्यतां यान्ति, यथा ते मूर्खपण्डिताः॥ ४०॥

व्याख्या—शास्त्रेषु कुशलाः = विद्यासु पटवः, लोकाचारविवर्जिताः = लोकव्यवहार-शून्याः, हास्यतां यान्ति = परिहासपात्रतां गच्छन्ति, ते मूर्खपण्डिताः = मूर्खाश्च ते पण्डिताः॥ ४०॥

तभी सुबुद्धि ने रोका—आप रुक जाओ, यह तो एक सिंह जीवित किया जा रहा है। यदि इसे जीवित कर दोगे तो वह सब को मार डालेगा।

सुबुद्धि के ऐसा कहने पर वह बोला—'अरे मूर्ख, मैं अपनी विद्या को विफल नहीं करूँगा।' तब सुबुद्धि ने कहा—तो तुम कुछ देर ठहर जाओ, जब तक मैं वृक्ष पर चढ जाता हूँ।

ऐसा करने पर जब सिंह जीवित किया गया, तब उसने उठकर उन तीनों को मार डाला और सुबुद्धि बाद में वृक्ष से उतर कर घर को चला गया। इसीलिए मैं कहता हूँ—बुद्धि श्रेष्ठ है न कि केवल विद्या।

इसके अनन्तर सुवर्णसिद्धि ने फिर से कहा—

शास्त्रों में पारङ्गत होने पर भी लोकाचार से शून्य होने पर व्यक्ति उसी प्रकार उपहास का पात्र बन जाता है जैसे कि वे मूर्ख पण्डित॥ ३९॥

चक्रधर ने पूछा—वह कैसे? सुवर्ण सिद्धि ने कहा—

४. मूर्खपण्डित-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणाः परस्परं मित्रत्वमापन्ना वसन्ति स्म। बालभावे तेषां मतिरजायत—"भोः ! देशान्तरं गत्वा, विद्याया उपार्जनं क्रियते।

अथान्यस्मिन्दिवसे ते ब्राह्मणाः परस्परं निश्चयं कृत्वा विद्योपार्जनार्थं कान्यकुब्जे गताः। तत्र च विद्यामठे गत्वा पठन्ति। एवं द्वादशाब्दानि यावदेकचित्ततया पठित्वा, विद्याकुशलाऽस्ते सर्वे सञ्जाताः।

ततस्तैश्चतुर्भिर्मिलित्वोक्तम्—"वयं सर्वविद्यापारङ्गताः। तदुपाध्यायमुत्कलापयित्वा स्वदेशे गच्छामः। तथैवाऽनुष्ठीयतामित्युक्त्वा ब्राह्मणा उपाध्यायमुत्कलापयित्वा, अनुज्ञां लब्ध्वा पुस्तकानि नीत्वा, प्रचलिताः। यावत्किञ्चिन्मार्गं यान्ति, तावद् द्वौ पन्थानौ समायातौ दृष्ट्वा उपविष्टाः सर्वे।

तत्रैकः प्रोवाच—"केन मार्गेण गच्छामः ?"

एतस्मिन्समये तस्मिन् पत्तने कश्चिद् वणिक्पुत्रो मृतः। तस्य दाहाय महाजनो

कस्मिंश्चिदिति। मित्रत्वमापन्नाः = मित्रभावमुपगताः, बाल्यकाले = बाल्यावस्थायाम्, मतिरजायत = मतिरभूत्, विद्योपार्जनार्थं = पठनार्थं, विद्यामठे = पाठशालायाम्, द्वादशाब्दानि = द्वादशवर्षेण यावत्, एकचित्ततया = एकाग्रतया, उत्कलापयित्वा=पृष्ट्वा, अनुज्ञातम् = अनुमतिम्, लब्ध्वा = प्राप्य, समायातौ = समागतौ।

पत्तने = नगरे, दाहाय = अग्निसंस्काराय, महाजनः = वणिक्समूहः, महाजन-

---

४. मूर्खपण्डित-कथा

किसी स्थान पर चार ब्राह्मण रहते थे। उनमें परस्पर मित्रता थी। बाल्यकाल में उनके मन में विचार आया कि—'चलो विदेश में जाकर विद्याध्ययन करें।'

दूसरे दिन वे ब्राह्मण आपस में निश्चय करके विद्याध्ययन के लिए कान्यकुब्ज में गये और वहाँ विद्या-मन्दिर में जाकर पढ़ना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार बारह वर्ष तक एकाग्रचित्त से पढ़कर वे विद्या में निपुण हो गये।

तदनन्तर उन चारों ने मिलकर कहा—हम सभी विद्या में पारङ्गत हो चुके हैं अतः उपाध्याय की आज्ञा लेकर अपने देश को जाते हैं। ऐसा ही करना चाहिए—इस प्रकार निश्चय करके वे ब्राह्मण उपाध्यायजी से पूछकर, उनकी आज्ञा प्राप्तकर पुस्तकें लेकर चल पड़े। थोड़ी दूर जाने पर आगे दो मार्ग देखकर वे सब बैठ गये और सोचने लगे।

उनमें से एक बोला—'किस मार्ग से जावें ?' उसी समय वहाँ नगर में कोई बनिये का पुत्र मर गया था। उसको जलाने के लिए बहुत से लोग जा रहे थे। तब उन चारों में से किसी एक ने पुस्तक खोलकर देखा—महाजन जिस मार्ग से जाय, उस मार्ग से जाना चाहिए। अतः हम लोग महाजनों के इसी मार्ग पर जाते हैं।

गतोऽभूत् । ततश्चतुर्णां मध्यादेकेन पुस्तकमवलोकितं—"महाजनो येन गतः स पन्थाः" इति । तन्महाजनमार्गेण गच्छामः ।

अथ ते पण्डिता यावन्महाजनमेलापकेन सह यान्ति, तावद्रासभः कश्चित्तत्र श्मशाने दृष्टः । अथ द्वितीयेन पुस्तकमुद्घाट्यावलोकितम्—

उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसङ्कटे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥ ४१ ॥

तदहो ! अयमस्मदीयो बान्धवः । ततः कश्चित्तस्य ग्रीवायां लगति, पादौ प्रक्षालयति ।

तावत्तृतीयेन पुस्तकमुद्घाट्योक्तम्—"धर्मस्य त्वरिता गतिः । नूनमेष धर्मस्तावत् ।' चतुर्थेनोक्तम्—'इष्टं धर्मेण योजयेत् ।'

अथ तैश्च रासभ उष्ट्रग्रीवायां बद्धः । तत्तु केनचित्तत्स्वामिनो रजकस्याग्रे कथितम् । यावद्रजकस्तेषां मूर्खपण्डितानां प्रहारकरणाय समायातस्तावत्ते प्रनष्टाः ।

मार्गेण = येन मार्गेण यथा महाजनो गतः तेन मार्गेण इत्यर्थः । महाजनमेलापकेन = वणिक्जनसमूहेन, रासभः = गर्दभः । श्मशाने = प्रेतभूमौ ।

अन्वयः—उत्सवे, व्यसने, दुर्भिक्षे, शत्रुसङ्कटे, प्राप्ते राजद्वारे, श्मशाने च यः तिष्ठति स बान्धवः ॥ ४१ ॥

व्याख्या—उत्सवे = माङ्गलिककार्ये, व्यसने = दुःखे, शत्रुसङ्कटे = वैरिकृते भये, प्राप्ते = समुपस्थिते, राजद्वारे = राजसभायां, श्मशाने च यः तिष्ठति = वर्तते, बान्धवः = परिजनः ॥ ४१ ॥

तदिति । अयम् = रासभः, ग्रीवायां = कण्ठे, प्रक्षालयति = प्रोञ्छति । त्वरिता गतिः = वेगेन चलतीत्यर्थः, इष्टं = अभिलषितं, योजयेत्=नियोजयेत्, तत्तु = तद्वृत्तान्तं, रजकस्य = निर्णेजकस्य, प्रहारकरणाय = ताडनाय, प्रनष्टाः = पलायिताः, स्तोकम् =

तत्पश्चात् वे चारों विद्वान् ब्राह्मण वणिक-समूह के साथ चल पड़े । उन्होंने श्मशान में जाकर एक गदहा देखा । दूसरे ने पुस्तक खोलकर देखा और कहा—

उत्सव के समय, दुःख में, दुर्भिक्ष में, शत्रुओं से घिर जाने पर, राजसभा में तथा श्मशान में जो व्यक्ति मिले उसे अपना बन्धुतुल्य समझना चाहिए ॥ ४० ॥

'अतः यह गदहा भी हमारा बन्धु ही होगा ।' उसकी यह बात सुनकर कोई तो उस गदहे को गले लगाने लगा और कोई पैर धोने लगा ।

तभी उन पण्डितों ने दूसरी दिशा में देखा तो उन्हें एक ऊँट दिखाई पड़ा । वे बोले-यह क्या है ?

तब तीसरे ने पुस्तक खोलकर कहा—'धर्म की गति तीव्र होती है ।' अतः निश्चय ही यह धर्म है । चतुर्थ ने कहा—'मित्र को धर्म के साथ जोड़ना चाहिए ।'

अनन्तर उन्होंने रासभ को ऊँट की गर्दन में बाँध दिया । तब यह बात किसी ने

ततो यावदग्रे किञ्चित्स्तोकं मार्गं यान्ति तावत्काचिन्नदी समासादिता। तस्य जलमध्ये पलाशपत्रमायातं दृष्ट्वा पण्डितेनैकेनोक्तम्—

"आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति"

एतत्कथयित्वा तत्पत्रस्योपरि पतितो यावन्नद्या नीयते तावत्तं नीयमानमवलोक्याऽन्येन पण्डितेन केशान्तं गृहीत्वोक्तम्—

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।
अर्धेन कुरुते कार्यं, सर्वनाशो हि दुःसहः॥ ४२॥

इत्युक्त्वा तस्य शिरश्छेदो विहितः।

अथ तैश्च पश्चाद् गत्वा कश्चिद्ग्राम आसादितः। तेऽपि ग्रामीणैर्निमन्त्रिताः पृथग् गृहेषु नीताः। ततः, एकस्य सूत्रिका घृतखण्डसंयुता भोजने दत्ता। ततो विचिन्त्य पण्डितेनोक्तं यत्—"दीर्घसूत्री विनश्यति"। एवमुक्त्वा भोजनं

अल्पम्, समासादिता = प्राप्ता, पलाशपत्रं = पलाशवृक्षस्य पत्रं, तारयिष्यति = पारं प्रापयिष्यति, पतितः = पपात, नद्या नीयते = जले निमज्जति, केशान्तं = केशाग्रभागं।

अन्वयः—पण्डितः, सर्वनाशे समुत्पन्ने, अर्धं त्यजति, अर्धेन कार्यं, कुरुते, हि सर्वनाशो दुःसहः (भवति)॥ ४२॥

व्याख्या—सर्वनाशे समुत्पन्ने = विनाशे प्राप्ते सति, पण्डितः = बुद्धिमान्, अर्धं= तदर्धभागं, त्यजति = परित्यजति। कुरुते = सम्पादयति। दुःसहः = सोढुमशक्यः। सर्वनाशादर्धनाशो युक्त इति भावः॥ ४२॥

शिरच्छेदः = मस्तककर्तनम, विहितः = कृतः।

अथेति। तैः = शेषैः, ग्रामीणैः = ग्रामवासिभिः, निमन्त्रिताः=भोजनार्थमामन्त्रिताः, घृतखण्डसंयुता = घृतशर्करामिश्रिता, दीर्घसूत्री = चिरक्रियः, मण्डका = रोटिका, वटिका=

गदहे के मालिक धोबी को आकर कह दी। जब धोबी उन मूर्ख पण्डितों को मारने के लिए पहुँचा तब तक वे भाग चुके थे।

इसके बाद जब वे कुछ दूर और गये तो उन्हें एक नदी मिली। उस नदी के बीच एक पलाश का पत्ता बह रहा था उसे देखकर एक पण्डित ने कहा—'जो पत्ता आ रहा है, वह हमें नदी के उस पार उतार देगा।' ऐसा कहकर वह उस पत्ते के ऊपर गिर पड़ा। जब वह नदी में बहने लगा, तब उसे देखकर दूसरे पण्डित ने उसकी चोटी को पकड़ कर कहा—

सर्वनाश का समय उपस्थित होने पर विद्वान् पुरुष आधा छोड़ देता है। वह आधे से ही सन्तोष कर लेता है क्योंकि सर्वनाश अत्यन्त दुस्सह होता है॥ ४१॥

ऐसा विचारकर उसने बहते हुए का शिर काट दिया।

तदनन्तर शेष तीनों पण्डितों ने आगे चलकर एक गाँव में प्रवेश किया। ग्रामवासियों ने ब्राह्मण जानकर उन्हें निमन्त्रित किया और उन्हें अलग-अलग घरों में ले गये। तदनन्तर किसी गृहस्थ ने घी और चीनी मिलाकर सेवई भोजन में दी। तब प

त्यज्य गतः। तथा द्वितीयस्य मण्डका दत्ताः, तेनाऽप्युक्तम्—"अतिविस्तारविस्तीर्णं तद्भवेन्न चिरायुषम्"। स च भोजनं त्यक्त्वा गतः। अथ तृतीयस्य वटिका भोजने दत्ता। तत्राऽपि तेन पण्डितेनोक्तम्—"छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।"। एवं ते त्रयोऽपि पण्डिताः क्षुत्क्षामकण्ठाः, लोकैर्हास्यमानास्ततः स्थानात् स्वदेशं गताः।"

अथ सुवर्णसिद्धिराह—"यत्त्वं लोकव्यवहारमजानन्मया वार्यमाणोऽपि न स्थितः तत ईदृशीमवस्थामुपगतः। अतोऽहं ब्रवीमि—"अपि शास्त्रेषु कुशलाः" इति।

तत् श्रुत्वा चक्रधर आह—अहो, अकारणमेतत् यतो हि—

सुबुद्धयो विनश्यन्ति दुष्टदैवेन नाशिताः।
स्वल्पधीरपि तस्मिंस्तु कुले नन्दति सन्ततम् ॥ ४३ ॥

वड़ा इति भाषायां; छिद्रेषु = छिद्रयुक्तेषु, अनर्थाः=आपत्तयः, बहुलीभवन्ति=स्फारीभवन्ति, क्षुत्क्षामकण्ठाः = क्षुधाशुष्ककण्ठाः, बुभुक्षिता इत्यर्थः, हास्यमानाः = तिरस्कारं प्राप्त्वा।

अथेति। लोकव्यवहारमजानम् = लोकाचारमज्ञात्वा, वार्यमाणोऽपि = निवारितोऽपि, न स्थितः = अग्रे गमनान्न निवृतः, ईदृशीं = चक्राच्छन्नमस्तकरूपां, अवस्थां = स्थितिम्, अकारणम् = निरर्थकम्।

अन्वयः—दुष्टदैवेन नाशिताः, सुबुद्धयः, विनश्यन्ति, तस्मिन् कुले, स्वल्पधीः अपि सन्ततं, नन्दति ॥ ४३ ॥

व्याख्या—दुष्टदैवेन = प्रतिकूलभाग्येन, सुबुद्धयः = सुधियः, तस्मिन्कुले = तत्रैव, स्वल्पधीः = मन्दधीः, नन्दति = मोदते ॥ ४३ ॥

पण्डित ने सोचकर कहा—'दीर्घ सूत्रवाला नष्ट हो जाता है।' ऐसा कहकर भोजन छोड़कर चला गया। दूसरे पण्डित को भोजन में रोटी दी गयी थी। उसने भी कहा—अधिक विस्तृत वस्तु चिरस्थायी नहीं होती है (अतः मैं भी अल्पायु हो जाऊँगा) ऐसा सोचकर वह भी भोजन त्यागकर उठ गया। तब तीसरे को भोजन में वड़ा दिया। उसने विचार किया—छिद्र (दोष) अधिक होने पर आपत्तियाँ बढ जाती हैं' (यह सोचकर उसने भी भोजन त्याग दिया)। इस प्रकार तीनों ही पण्डित भूख से पीडित रहे और लोगों ने उनकी हँसी उड़ायी। अनन्तर वे उस ग्राम से अपने घर की ओर लौटे।

मूर्ख पण्डितों की इस कथा को कहने के बाद सुवर्णसिद्धि बोला—तुम लोकव्यवहार को न जानते हुए मेरे द्वारा रोके जाने पर भी रुके नहीं अतः ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हुए हो। अतः मैं कहता हूँ—शास्त्र में कुशल होने पर भी—इत्यादि।

यह सुनकर चक्रधर ने कहा—तुम्हारा यह कथन युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि—भाग्य के प्रतिकूल होने पर बुद्धिमान् पुरुष भी कष्ट उठाते हैं और भाग्य के अनुकूल होने से अल्पबुद्धि मनुष्य भी अपने कुल में निरन्तर आनन्द मनाते हैं ॥ ४३ ॥

उक्तं च—अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः, कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति ॥ ४४ ॥
तथा च—शतबुद्धिः शिरस्थोऽयं लम्बते च सहस्रधीः।
एकबुद्धिरहं भद्रे! क्रीडामि विमले जले ॥ ४५ ॥
सुवर्णसिद्धिराह—"कथमेतत्?" स आह—

९. मत्स्यमण्डूक-कथा

"कस्मिंश्चिज्जलाशये शतबुद्धिः सहस्रबुद्धिश्च द्वौ मत्स्यौ निवसतः स्म। अथ तयोरेकबुद्धिर्नाम मण्डूको मित्रतां गतः। एवं ते त्रयोऽपि जलतीरे वेलायां कञ्चित्कालं सुभाषितगोष्ठीसुखमनुभूय, भूयोऽपि सलिलं प्रविशन्ति।

अन्वयः—दैवरक्षितं अरक्षितं तिष्ठति, दैवहतं सुरक्षितं विनश्यति। वने विसर्जितः अनाथोऽपि जीवति कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति ॥ ४४ ॥

व्याख्या—दैवरक्षितं = भाग्यरक्षितम्, तिष्ठति = स्थिरो भवति, दैवहतं = भाग्यविनाशितं वस्तु, सुरक्षितं = सम्यग् रक्षितमपि, विसर्जितः = त्यक्तः, अनाथः = सहायहीनः, कृतप्रयत्नोऽपि = विहितयत्नोऽपि, न जीवति = विनश्यति इत्यर्थः।

अन्वयः—अयं शतबुद्धिः, शिरस्थः, सहस्रधीः च लम्बते। भद्रे, अहं एकबुद्धिः विमले जले क्रीडामि ॥ ४५ ॥

[व्याख्या]—अयं = पुरो दृश्यमानः, शतबुद्धिः = तन्नामको मत्स्यः, सहस्रधीः=सहस्रबुद्धिः, एकबुद्धिरहं = तदाख्यः मण्डूकोऽहं क्रीडामि = विहरामि ॥ ४५ ॥

कस्मिंश्चिदिति। जलाशये = सरसि, मित्रतां गतः = मित्रभावमुपगतः, अस्तमनवेलायां = सायंकाले, सुभाषितगोष्ठीसुखं = सदालापसभाया आनन्दं, गोष्ठीगतानां = गोष्ठी

कहा भी है—जो वस्तु भाग्य द्वारा रक्षित है, वह अरक्षित होने पर भी बची रहती है और भाग्य से अरक्षित होने पर सुरक्षित वस्तु भी नष्ट हो जाती है। वन में छोड़ा गया अनाथ बालक भी (दैवरक्षित होने से) जीवित रहता है और भाग्य के विपरीत होने से हजारों प्रयत्न करने पर भी घर में जीवित नहीं रह पाता ॥ ४३ ॥

और भी—

भद्र, यह शतबुद्धि नाम का मत्स्य (धीवर के) मस्तक पर रखा हुआ है और सहस्रबुद्धि (कन्धे से) लटक रहा है। परन्तु मैं एक बुद्धि होकर भी इस निर्मल जल में विहार करता हूँ ॥ ४४ ॥

सुवर्णसिद्धि ने पूछा—यह घटना किस प्रकार की है? चक्रधर ने उत्तर दिया—

मत्स्य-मण्डूक कथा

किसी तालाब में शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि नाम की दो मछलियाँ रहती थीं। उनसे किसी एकबुद्धि नामक मेंढक से मित्रता हो गयी। वे तीनों सायं काल तालाब

अथ कदाचित्तेषां गोष्ठीगतानां जालहस्ता धीवराः प्रभूतैर्मत्स्यैर्व्यापादितैर्मस्तके विधृतैरस्तमनवेलायां तस्मिञ्जलाशये समायाताः । ततः सलिलाशयं दृष्ट्वा मिथः प्रोचुः—"अहो ! बहुमत्स्योऽयं ह्रदो दृश्यते, स्वल्पसलिलश्च । तत्प्रभातेऽत्रागमिष्यामः ।" एवमुक्त्वा स्वगृहं गताः ।

मत्स्याश्च विषण्णवदना मिथो मन्त्रं चक्रुः । ततो मण्डूक आह—"भोः, शतबुद्धे ! श्रुतं धीवरोक्तं भवता ? तत्किमत्र युज्यते कर्तुम्, पलायनमवष्टम्भो वा ? यत्कर्तुं युक्तं भवति तदादिश्यतामद्य ।"

तत् श्रुत्वा सहस्रबुद्धिः प्रहस्य आह—"भो मित्र ! मा भैषीः, तयो वचनश्रवणमात्रादेव भयं कार्यम् ? । न भेतव्यम् । उक्तं च—

सर्पाणां च खलानां च सर्वेषां दुष्टचेतसाम् ।
अभिप्राया न सिध्यन्ति तेनेदं वर्तते जगत् ॥ ४६ ॥

कुर्वतां, धीवराः = कैवर्ताः, व्यापादितैः = निहतैः, विधृतैः = स्थापितैः, अस्तमनवेलायां = सूर्यास्तकाले, सलिलाशयं = सरोवरं, प्रोचुः = मन्त्रयामासुः, ह्रदः = तडागः, स्वल्पसलिलश्च = परिमितजलश्च ।

मत्स्येति । विषण्णवदनाः = म्लानमुखाः, चिन्ताग्रस्ता इत्यर्थः, मन्त्रं = विचारं, चक्रुः = विदधुः, पलायनम् = इदं जलाशयं त्यक्त्वा अन्यत्र गमनम् । अवष्टम्भः = अवस्थानं, मा भैषीः = भयं मा कुरु, वचनश्रवणमात्रादेव = तेषां वार्तालापश्रवणेनैव ।

अन्वयः—सर्पाणां च खलानां च दुष्टचेतसां, सर्वेषाम्, अभिप्रायाः न सिद्ध्यन्ति, तेन, इदं जगत् वर्तते ॥ ४६ ॥

व्याख्या—सर्पाणां = भुजङ्गानाम्, खलानां = दुष्टानाम्, सर्वेषां = समस्तानां, दुष्ट-

के किनारे बैठकर कुछ समय सुभाषित-गोष्ठी का आनन्द लेकर पुनः जल में प्रवेश कर जाते थे ।

एक दिन शाम को वे गोष्ठी कर रहे थे, तभी कुछ धीवर लोग हाथ में जाल लेकर तथा मारी हुई बहुत सी मछलियों को शिर पर रखकर उस तालाब की ओर आये । तदनन्तर जलाशय को देखकर वे आपस में कहने लगे—'अहो, इस तालाब में खूब मछलियाँ हैं और जल भी बहुत थोड़ा है, तो कल सुबह यहीं पर आयेंगे ।' ऐसा विचार कर अपने घर चले गये ।

उनके चले जाने पर मछलियों ने उदास होकर आपस में मन्त्रणा की । तब मण्डूक ने कहा—हे शतबुद्धि, तुमने धीवर की बात सुनी ? यहाँ क्या करना उचित है ? भागना ठीक है अथवा यहीं ठहरना उचित है ? जो कुछ भी उचित हो, वैसा ही अब किया जाय ।

यह सुनकर सहस्रबुद्धि ने हँसकर कहा—अरे, मित्र, डरो मत । उनके कहने मात्र से ही डर जाना चाहिए ? नहीं डरना चाहिए । कहा भी है—

सर्पों, नीच व्यक्तियों तथा दुष्ट लोगों के मनोरथ सफल नहीं होते हैं । इसी कारण

तत्तावत्तेषामागमनमपि न संपत्स्यते। भविष्यति वा तर्हि त्वां बुद्धिप्रभावेणा-त्मसहितं रक्षयिष्यामि। यतोऽनेकां सलिलचर्यामहं जानामि।"

तदाकर्ण्य शतबुद्धिराह—"भोः युक्तमुक्तं भवता। सहस्रबुद्धिरेव भवान्। अथवा साध्विदमुच्यते—

बुद्धेर्बुद्धिमतां लोके नाऽस्त्यगम्यं हि किञ्चन।
बुद्ध्या यतो हता नन्दाश्चाणक्येनासिपाणयः॥ ४७॥

तथा च— न यत्राऽस्ति गतिर्वायो रश्मीनां च विवस्वतः।
तत्राऽपि प्रविशत्याशु बुद्धिर्बुद्धिमतां सदा॥ ४८॥

चेतसां = दुष्टं दोषग्रस्तं चेतश्चितं येषां तादृशानां च मलिनान्तःकरणानामिति यावत्, मनोरथाः, न सिध्यन्ति = सिद्धिं न प्राप्नुवन्ति, तेन = हेतुना, जगदिदं = लोकोऽयं, वर्तते = तिष्ठति॥ ४६॥

तदिति। तेषां = धीवराणां, संपत्स्यते = सिद्धिं गच्छति, प्रभावेण = स्वबुद्ध्या, आत्मसहितं = मत्सहितम्, सलिलगतिचर्याम् = जलसञ्चरणकौशलं, युक्तम् = उचितम्।

अन्वयः—लोके बुद्धिमतां बुद्धेः किञ्चन अगम्यं नास्ति, यतो चाणक्येन बुद्ध्या असिपाणयः नन्दाः हताः॥ ४७॥

व्याख्या—बुद्धमतां = प्रज्ञाशालिनाम्, अगम्यम् = दुर्गमं, बुद्ध्या = स्वमत्या, असि-पाणयः = असिः शस्त्रं पाणौ हस्ते येषां तादृशाः, नन्दाः = नन्दकुलोद्भवा राजानः, हताः = निहताः॥ ४७॥

अन्वयः—यत्र वायोः विवस्वतः रश्मीनां, सदा गतिः नास्ति तत्रापि बुद्धिमतां बुद्धि आशु प्रविशति॥ ४८॥

व्याख्या—यत्र = अस्मिन्स्थाने, वायोः = वातस्य विवस्वतः = सूर्यस्य, रश्मीनां = किरणनाम्, गतिः = प्रवेशः, नास्ति = न भवति, बुद्धिमतां धीः = मनीषिणां प्रज्ञा, आशु = शीघ्रं, प्रविशति = प्रविष्टा भवति, गच्छतीत्यर्थः॥ ४८॥

यह जगत् विद्यमान है॥ ४६॥

इसलिए इन लोगों का आना भी सम्भव नहीं है। यदि आयेंगे भी तो मैं अपनी बुद्धि के प्रभाव से अपने साथ तुम्हें भी बचा लूँगा। क्योंकि मैं अनेक प्रकार से जल में तैरना जानता हूँ।'

यह सुनकर शतबुद्धि बोला—आप ने ठीक ही कहा है, आप सचमुच ही सहस्रबुद्धि हैं। अथवा ठीक ही कहा गया है—

इस संसार में बुद्धिमानों की बुद्धि से कुछ भी अगम्य नहीं है। क्योंकि चाणक्य ने अपने बुद्धि बल से ही खड्गधारी नन्दवंश को नष्ट कर दिया था॥ ४७॥

और भी—

जहाँ वायु की गति नहीं हो सकती तथा सूर्य की किरणें भी नहीं पहुँच सकती, वहाँ बुद्धिमानों की बुद्धि अत्यन्त शीघ्र प्रवेश कर जाती है॥ ४८॥

ततो वचनश्रवणमात्रादपि पितृपर्यायागतं जन्मस्थानं त्यक्तुं न शक्यते । उक्तं च—न तत्स्वर्गेऽपि सौख्यं स्याद्दिव्यस्पर्शेन शोभने ।
कुस्थानेऽपि भवेत्पुंसां जन्मनो यत्र संभवः ॥ ४९ ॥
तन्न कदाचिदपि गन्तव्यम् । अहं त्वां बुद्धिप्रभावेण रक्षयिष्यामि ।

मण्डूक आह—"भद्रौ ! मम तावदेकैव बुद्धिः पलायनपरा । तदहमन्यं जलाशयमद्यैव सभार्यो यास्यामि ।" एवमुक्त्वा स मण्डूको रात्रावेवाऽन्य-जलाशयं गतः ।

धीवरैरपि प्रभाते आगत्य, जघन्यमध्यमोत्तमजलचराः मत्स्यकूर्ममण्डूककर्कटादयो गृहीताः । तावपि शतबुद्धिसहस्रबुद्धी सभार्यौ पलायमानौ चिरमात्मानं गतिविशेषविज्ञानैः कुटिलचारेण रक्षन्तौ जाले निपतितौ, व्यापादितौ च ।

तत इति । वचनश्रवणमात्रादपि=धीवरवचनं श्रुत्यैव, पितृपर्यायागतं=वंशपरम्परागतम्, जन्मस्थानं = मातृभूमिम्, त्यक्तुं = परित्यक्तुम् ।

अन्वयः—शोभने स्वर्गेऽपि दिव्यस्पर्शेन तत्सौख्यं न (भवति, यत्) पुंसां यत्र जन्मनः संभवः (तत्र) कुस्थानेऽपि भवेत् ॥ ४९ ॥

व्याख्या—शोभने = रमणीये, स्वर्गे = दिवि, दिव्यस्पर्शेन = देवाङ्गनास्पर्शेन, तत्सौख्यं = तत्सुखं, न स्यात् = नोपलभ्येत, कुस्थानेऽपि = निन्दितस्थानेऽपि, पुसां = पुरुषाणां, जन्मनः संभवः = यत्र जन्मस्थानम् , तत्र कुस्थानेऽपि = कष्टप्रदे स्थानेऽपि ॥४९॥

तन्न इति । भद्रौ=श्रेष्ठपुरुषौ, पलायनपरा = पलायनयोग्या, जघन्याः = कनिष्ठाः, गतिविशेषविज्ञानैः = जलतरणज्ञानविशेषैः, कुटिलचारेण = वक्रगमनेन ।

इसलिए उनके वचन मात्र को सुनकर पूर्वपुरुषों द्वारा परम्परागत जन्मस्थान का परित्याग करना उचित नहीं है ।

कहा भी है—

रमणीय स्वर्ग में देवाङ्गनाओं के स्पर्श से भी वह सुख नहीं मिलता, जो कि मनुष्य को अपनी जन्मभूमि में मिलता है, चाहे वह स्थान कितना ही कष्टप्रद क्यों न हो ॥ ४९ ॥

इसलिए यहाँ से कभी नहीं जाना चाहिए । मैं भी अपनी बुद्धि के प्रभाव से तुम्हारी रक्षा करूँगा ।

मण्डूक ने कहा—श्रीमान् जी, मेरी तो एक बुद्धि यही कहती है कि यहाँ से भाग जाना चाहिए । इसलिए मैं तो आज ही किसी दूसरे जलाशय में सपत्नीक चला जाऊँगा । ऐसा कहकर वह मण्डूक उस रात को ही दूसरे जलाशय में चला गया ।

प्रातः काल धीवरों ने आकर छोटे, मध्यम, तथा विशाल मत्स्यों, कछुओं, मेढ़कों तथा केकड़ों आदि सभी जलचरों को पकड़ लिया । शतबुद्धि और सहस्र बुद्धि ने भी अपनी स्त्रियों के साथ इधर-उधर भागते हुए जल संचरण सम्बन्धी अनेक कलाओं की

अथाऽपराह्नसमये प्रहृष्टास्ते धीवराः स्वगृहं प्रति प्रस्थिताः। गुरुत्वाच्चैकेन शतबुद्धिः स्कन्धे कृतः। सहस्रबुद्धिः प्रलम्बमानो नीयते। ततश्च वापीकण्ठोपगतेन मण्डूकेन तौ तथा नीयमानौ दृष्ट्वा अभिहिता स्वपत्नी—"प्रिये! पश्य पश्य—

शतबुद्धिः शिरस्थोऽयं, लम्बते च सहस्रधीः।
एकबुद्धिरहं भद्र! क्रीडामि विमले जले॥ ५०॥

अतश्च "वरं बुद्धिर्न सा विद्या" यद्भवतोक्तं तत्रेयं मे मतिर्यत्–न एकान्तेन बुद्धिरपि प्रमाणम्।"

सुवर्णसिद्धिः प्राह—यद्यप्येतदस्ति, तथाऽपि मित्रवचनं न लंघनीयम्। परं किं क्रियते, निवारितोऽपि मया न स्थितोऽसि, अतिलौल्यात् विद्याहङ्काराच्च। अथवा साध्विदमुच्यते—

साधु मातुल! गीतेन, मया प्रोक्तोऽपि न स्थितः।
अपूर्वोऽयं मणिर्बद्धः सम्प्राप्तं गीतलक्षणम्॥ ५१॥

अथेति। अपराह्नसमये = दिवावसानकाले, प्रलम्बमानः = नीचैः लम्बमानः, वापीकण्ठोपगतेन = वापीतीरोपविष्टेन, अभिहिता = कथिता, मतिः = निश्चयः। एकान्तेन = सर्वथा। प्रमाणम्=कार्यविधानं, न लङ्घनीयं = न त्याज्यम्। अतिलौल्यात्=अतिलोभात्॥

अन्वयः—मातुल! गीतेन साधु, मया प्रोक्तोऽपि न स्थितः (अतः) अपूर्वोऽयं मणिः बद्धः (इदानीं भवता) गीतलक्षणं संप्राप्तम्॥ ५१॥

व्याख्या—गीतेन = गानेन, साधु = समीचीनं त्वया कृतं धन्योऽसि त्वमित्यर्थः।

जानकारी के कारण कुटिल गमन द्वारा अपने को बहुत देर तक बचाने का प्रयत्न किया, परन्तु अन्त में वे जाल में फँस गये और मारे गये।

अनन्तर सूर्यास्त के समय वे धीवर लोग प्रसन्न होते हुए अपने घर की ओर चल दिये। शतबुद्धि भारी था अतः किसी धीवर ने उसे कन्धे पर रख लिया और लम्बा होने के कारण सहस्रबुद्धि को लटकाकर ले गया। उस समय वापी के तट पर बैठे हुए मण्डूक ने जब उन्हें इस प्रकार ले जाते हुए देखा तो वह अपनी पत्नी से बोला—प्रिये, देखो देखो—

भद्रे, यह शतबुद्धि शिर पर रखा हुआ है और सहस्रबुद्धि लटकता हुआ जा रहा है और मैं एक बुद्धि निर्मल जल में विहार कर रहा हूँ। अतः आपने जो यह कहा था कि 'बुद्धि श्रेष्ठ है. विद्या नहीं' इस विषय में मेरा यह मत है कि केवल बुद्धि ही उत्तम है, यह यथार्थ नहीं है।

सुवर्णसिद्धि ने कहा—यदि ऐसा ही है तो भी मित्र की बात का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए। किन्तु क्या किया जाय, अतिलोभ और विद्या के अहङ्कार के कारण तुम मेरे द्वारा बार-बार मना करने पर भी रुके नहीं। अथवा उचित ही कहा गया है—

मामाजी, गीत मत गाओ (तुम्हारा गीत बिलकुल अच्छा नहीं लगता है)

चक्रधर आह—"कथमेतत् ? सोऽब्रवीत्—

६. रासभशृगाल-कथा

"कस्मिंश्चिदधिष्ठाने उद्धतो नाम गर्दभः प्रतिवसति स्म। सः सदैव रजकगृहे भारोद्वहनं कृत्वा रात्रौ स्वेच्छया पर्यटति। ततः प्रत्यूषे बन्धनभयात्स्वयमेव रजकगृहमायाति। रजकोऽपि ततस्तं बन्धनेन नियुनक्ति।

अथ तस्य रात्रौ क्षेत्राणि पर्यटतः, कदाचिच्छृगालेन सह मैत्री सञ्जाता। स च पीवरत्वाद् वृतिभङ्गं कृत्वा कर्कटिकाक्षेत्रे शृगालसहितः प्रविशति। एवं तौ यदृच्छया चिर्भटिकाभक्षणं कृत्वा, प्रत्यहं प्रत्यूषे स्वस्वस्थानं व्रजतः।

प्रोक्तोऽपि = निवारितोऽपि, कथितोऽपि, न स्थितः = न विरतोऽभूः, अपूर्वः, = विलक्षणः, मणिः = रत्नम्, उलूखलरूपमिति भावः, गीतलक्षणं = गीतस्य पारितोषिकस्वरूपं चिह्नम्, संप्राप्तम् = अधिगतम् ॥ ५१ ॥

कस्मिंश्चिदिति। रजकगृहे = 'धोबी' इति प्रसिद्धस्य जातिविशेषस्य गृहे। भारोद्वहनं= वस्त्रादिभारवहनं, स्वेच्छया=यथेच्छं, पर्यटति = भ्रमति, प्रत्यूषे = प्रातःकाले, बन्धनभयात् बन्धनप्रहारादिदण्डभयात्, आयाति = आगच्छति, नियुनक्ति = बध्नाति। तस्य = गर्दभस्य क्षेत्राणि पर्यटतः=क्षेत्राणि परिभ्रमतः, पीवरत्वात् = स्थूलत्वात्, वृतिभंगं = सालभंगं वेष्टनभंगं कृत्वा इत्यर्थः। कर्कटिका = उर्वारुः ("उर्वारुः कर्कटी स्त्रियौ" इत्यमरः) चिर्भटिका = कर्कटिका, व्रजतः = गच्छतः, क्षेत्रमध्यस्थितेन=क्षेत्रान्तर्गतेन, भगिनीसुत=भागिनेय, निर्मला = गतकल्मषा, धवलेत्यर्थः, करोमि = गायामि इत्यर्थः।

इस प्रकार मेरे द्वारा बार-बार मना करने पर भी तुम नहीं रुके। तुम्हारे गीत का पुरस्कार रूप गले में बाँधा गया यह सुन्दर मणि मिल गया ॥ ५१ ॥

चक्रधर ने पूछा—यह कथा कैसी है ?

सुवर्ण सिद्धि ने कहना प्रारम्भ किया—

रासभ-शृगाल कथा

किसी स्थान पर उद्धत नाम का गदहा रहता था। वह प्रतिदिन धोबी के घर में कपड़ों की गठरी ढोने के बाद रात्रि में इच्छानुसार घूमा करता था। प्रातःकाल होते ही बाँधे जाने के भय से स्वयं ही वह धोबी के घर चला आता था। तब धोबी भी उसे रस्सी से बाँध देता था।

एक दिन रात्रि में खेतों में घूमते हुए उसकी किसी शृगाल (सियार) के साथ मित्रता हो गयी। वह खूब मोटा होने के कारण खेत के घेरे को तोड़कर शृगाल के साथ ककड़ी के खेत में घुस जाता था। इस प्रकार वे दोनों खेत में खूब पेट भर के ककड़ी खाकर रोज सुबह अपने-अपने स्थान पर चले जाते थे।

अथ कदाचित्तेन मदोद्धतेन रासभेन क्षेत्रमध्यस्थितेन शृगालोऽभिहितः—"भोः भगिनीसुत! पश्य-पश्य, अतीव निर्मला रजनी, तदहं गीतं करिष्यामि। तत्कथय कतमेन रागेण करोमि?

स आह—माम! किमनेन वृथाऽनर्थप्रचालनेन? यतश्चौरकर्मप्रवृत्तावावाम्, निभृतैश्च चौरजारैरत्र स्थातव्यम्। उक्तं च—

कासयुक्तस्त्यजेच्चौर्यं निद्रालुश्चेत्स पुंश्चलीम्।
जिह्वालौल्यं रुजाक्रान्तो जीवितं योऽत्र वाञ्छति ॥ ५२ ॥

अपरं त्वदीयं गीतं न मधुरस्वरम्, शङ्खशब्दानुकारं दूरादपि श्रूयते। तदत्र क्षेत्रे रक्षापुरुषाः सुप्ताः सन्ति। ते उत्थाय वधं बन्धनं वा करिष्यन्ति। तद्भक्षय तावदमृतमयीश्चिर्भटीः। मा त्वमत्र गीतव्यापारपरो भव।

सेति। आह = उक्तवान्। माम = हे मातुल। वृथा = व्यर्थम्। अनर्थप्रचालनेन = असत्प्रसङ्गोत्थापनेन, चौरकर्मप्रवृत्तौ = स्तेयकर्मणि प्रवृत्तौ निभृतैः = निगूढैः, चौरजारैः = चोरैः परस्त्रीगामिभिश्च, स्थातव्यम् = भवितव्यम्।

अन्वयः—योऽत्र जीवितुं वाञ्छति (सः) कासयुक्तः चौर्यं, निद्रालुश्च पुंश्चलीं, रुजाक्रान्तः जिह्वालौल्यं त्यजेत् ॥ ५२ ॥

व्याख्या:—जीवितुं=जीवनं, वाञ्छति = इच्छति, कासयुक्तः = कासरोगयुक्तः, चौर्यं= स्तेयं, निद्रालुः = निद्रातुरः, पुंश्चलीं = व्यभिचारिणीं स्त्रीं, रुजाक्रान्तः = रोगेणाभिभूतः जनः, जिह्वालौल्यं = रसनाचापल्यम् ॥ ५२ ॥

अपरमिति। शङ्खशब्दानुकारं=शङ्खध्वनिसदृशं, रक्षापुरुषाः=क्षेत्रपालाः, अमृतमयीः= अमृततुल्यमधुराः, गीतव्यापारपरः = गानतत्परः, वनाश्रयत्वात् = वनवासित्वात्, न वेत्सि= नावगच्छसि।

अनन्तर किसी दिन मदोद्धत रासभ ने खेत में खड़े हुए ही शृंगाल से कहा—ओ, भाँजे, देखो-देखो, यह रात्रि कितनी स्वच्छ है। मैं गीत गाना चाहता हूँ। तो बताओ मैं किस राग से गाना आरम्भ करूँ?

शृगाल बोला—मामाजी, इस प्रकार बेकार ही किसी अनर्थ को खड़ा करने से क्या लाभ? क्योंकि हम दोनों ही चोरी करने में लगे हैं। ऐसे समय में चोरों को चुपचाप ही रहना चाहिए। कहा भी है—

यदि अपना जीवन प्रिय हो तो जिसे खाँसी आती हो उसे चोरी छोड़ देनी चाहिए, यदि अधिक सोने वाला हो तो उसे परस्त्री-गमन नहीं करना चाहिए, और यदि रोगी हो तो उसे जीभ नहीं चलाना चाहिए ॥ ५२ ॥

दूसरी बात यह भी है कि आपके गाने का स्वर मधुर नहीं है। शङ्ख की ध्वनि की तरह वह दूर से ही सुनाई पड़ जाता है। यहाँ खेत में रखवाले सोये हुए हैं। वे उठकर मारेंगे और बाँध देंगे। इसलिए इस अमृत तुल्य ककड़ी का सेवन करो। तुम यहाँ पर गीत गाने के चक्कर में मत पड़ो।

तच्छ्रुत्वा रासभ आह—भोः, वनाश्रयत्वात्त्वं गीतरसं न वेत्सि, तेनैतद् ब्रवीपि । उक्तं च—

शरज्ज्योत्स्नाहते दूरं तमसि प्रियसन्निधौ ।
धन्यानां विशति श्रोत्रे गीतझङ्कारजा सुधा ॥ ५३ ॥

शृगाल आह—"माम ! अस्त्येतत्, परं न वेत्सि त्वं गीतम् । केवलमुन्नदसि । तत्किं तेन स्वार्थभ्रंशकेन ?"

रासभ आह—धिग्धिङ्मूर्ख ! किमहं न जानामि गीतम् ? तद्यथा तस्य भेदान् शृणु—

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ।
तानास्त्वेकोनपञ्चाशत्तिस्रो मात्रा लयास्त्रयः ॥ ५४ ॥

अन्वयः—तमसि दूरं शरज्ज्योत्स्नाहते प्रियसन्निधौ धन्यानां श्रोत्रे गीतझङ्कारजा सुधा विशति ॥ ५३ ॥

व्याख्या—तमसि = अन्धकारे, दूरं = दूरदेशपर्यन्तं, विशेषरूपेणेत्यर्थः शरज्ज्योत्स्नाहते = शरच्चन्द्रिकया नाशिते सति, प्रियसन्निधौ=प्रियजनस्य सामीप्ये च सति, धन्यानां = भाग्यवताम्, श्रोत्रे = कर्णे, गीतझंकारजा सुधा = गीतरवोत्थिता सुधा, विशति = प्रविशति ॥ ५३ ॥

शृगाल इति । अस्त्येतत् = सत्यमेतत्, उन्नदसि = उच्चैः शब्दं करोषि, स्वार्थभ्रंशकेन = स्वार्थविघातकेन, तस्य भेदात् = संगीतस्यरागादिभेदान् ।

अन्वयः—श्लोकानुक्रमेणैव बोध्यः ॥ ५४–५७ ॥

व्याख्या—सप्तस्वराः = सप्तस्वरभेदाः, ग्रामाः = स्वरसमूहाः, मूर्च्छना = स्वरस्यारोहावरोहः, तानाः = तालाः, मात्राः = ह्रस्वदीर्घप्लुताख्याः, स्थानम् = स्वरनिर्गमस्थानम् (उरः, कण्ठः, शिरस्त्रयः स्थानभेदाः) यतीनां = विरामाणाम्, आस्यानि = मुखानि,

---

यह सुनकर रासभ बोला—अरे, तुम जंगल में रहनेवाले गीत का आनन्द नहीं जानते हो, इसीलिए ऐसा कह रहे हो । कहा भी है—

शरत्कालीन चाँदनी से जब रात्रि का अन्धकार दूर हो जाता है और अपना प्रिय पास में खड़ा होता है तो उस समय गाये हुए गीत का अमृततुल्य रस भाग्यशाली पुरुषों के कान में ही प्रवेश कर पाता है ॥ ५३ ॥

शृगाल ने कहा—मामाजी, यह बात तो ठीक ही है परन्तु तुम गाना तो जानते नहीं, केवल जोर-जोर से चिल्लाते हो । अतः स्वार्थ की हानि करने से क्या लाभ ?

रासभ बोला—जा जा मूर्ख, क्या मैं गाना नहीं जानता हूँ ? संगीत के जितने भेद हैं उसे कहता हूँ, सुनो—

सात प्रकार के स्वर होते हैं, उनके तीन समूह होते हैं जिन्हें ग्राम कहा जाता है । इक्कीस मूर्च्छनाएँ होती हैं । उनचास ताल होते हैं । स्वरों की तीन मात्राएँ होती हैं और तीन लय होते हैं ॥ ५४ ॥

स्थानत्रयं यतीनां च षडास्यानि रसा नव।
रागाः षट्त्रिंशतिर्भावाश्चत्वारिंशत्ततः स्मृताः ॥ ५५ ॥
पञ्चाशीत्यधिकं ह्येतद्गीताङ्गानां शतं स्मृतम्।
स्वयमेतपुरा प्रोक्तं भरतेन श्रुतेः परम् ॥ ५६ ॥
नान्यद्गीतात्प्रियं लोके देवानामपि दृश्यते।
शुष्कस्नायुस्वराह्लादात् त्र्यक्षं जग्राह रावणः ॥ ५७ ॥

तत्कथं भगिनीसुत ! मामनभिज्ञं वदन्निवारयसि ?

शृगाल आह—"माम ! यद्येवं तदहं तावद् वृतेर्द्वारस्थितः क्षेत्रपालमवलोकयामि, त्वं पुनः स्वेच्छया गीतं कुरु।"

तथाऽनुष्ठिते रासभरटनमाकर्ण्य, क्षेत्रपः क्रोधात् दन्तान्घर्षयन् प्रधावितः। यावद्रासभो दृष्टस्तावल्लगुडप्रहारैस्तथा हतो, यथा प्रताडितो भूपृष्ठे पतितः। ततश्च सच्छिद्रमुलूखलं तस्य गले बद्ध्वा क्षेत्रपालः प्रसुप्तः। रासभोऽपि स्वजातिस्वभावाद् गतवेदनः क्षणेनाऽभ्युत्थितः।

रसाः = नवरसभेदाः, रागाः = रागिण्य, गीतांगानां = गीतावयवानां, श्रुतेः परं = वेदस्य सारभूतं तत्वं, श्रवणसुखदं वा, शुष्कस्नायुः = तन्त्री, स्वराह्लादात् = स्वरालापात्, त्र्यक्षं = त्रिनेत्रं शिवम्, जग्राह = प्रीणयामास ॥ ५४–५७ ॥

तदिति। अनभिज्ञं = अज्ञातारं, वृतेः = वेष्टनस्य, क्षेत्रपः = क्षेत्ररक्षकः, प्रताडितः = हतः, भूपृष्ठे = पृथिव्याम्, गतवेदनः = विगतदुःखः, अभ्युत्थितः = उत्थितः।

स्वरों के उद्गम स्थान तीन हैं। यति के भी तीन प्रकार हैं। आस्य प्रारम्भ छः प्रकार के होते हैं। नौ रस होते हैं। रागों के छत्तीस भेद हैं और भावों के चालीस भेद बताये गये हैं ॥ ५५ ॥

पञ्चमवेदरूप तथा सुनने में सुखद संगीत शास्त्र के इन १८५ भेदों को संगीत प्रवर्तक भरतमुनि ने स्वयं कहा है ॥ ५६ ॥

इस लोक में संगीत से दूसरा कुछ देवताओं के लिए भी प्रिय नहीं है, मनुष्य की तो बात ही क्या। रावण ने शिव को तन्त्री के स्वरालापों से ही प्रसन्न किया था ॥ ५७ ॥

हे भाँजे, तो फिर तुम मुझे अनभिज्ञ कहते हुए गाना गाने से क्यों रोक रहे हो ?

श्रृगाल ने कहा—मामाजी, यदि ऐसा ही चाहते हो तो मैं घेरे के द्वार पर खड़ा होकर खेत के रखवाले को देखता हूँ, फिर तुम स्वेच्छापूर्वक गीत प्रारम्भ करो।

उस प्रकार करने पर गदहे ने रेंकना आरम्भ कर दिया, उसे सुनकर क्षेत्रपाल क्रोध से दाँतों को पीसता हुआ दौड़ा। वहाँ पहुँचकर जब उसने गदहे को देखा तो डण्डे से इस प्रकार पीटना शुरु किया कि वह प्रताड़ित होकर वहीं भूमि पर गिर पड़ा। तदनन्तर एक सछिद्र उलूखल को लाकर उसके गले में बाँध दिया और पुनः जाकर सो गया। क्षेत्रपाल के

उक्तं च—सारमेयस्य चाऽश्वस्य रासभस्य विशेषतः ।

मुहूर्तात्परतो न स्यात्प्रहारजनिता व्यथा ॥ ५८ ॥

ततस्तमेवोलूखलमादाय वृतिं चूर्णयित्वा पलायितुमारब्धः । अत्रान्तरे शृगालोऽपि दूरादेव तं दृष्ट्वा सस्मितमाह—

साधु मातुल गीतेन मया प्रोक्तोऽपि न स्थितः ।
अपूर्वोऽयं मणिर्बद्धः सम्प्राप्तं गीतलक्षणम् ॥ ५९ ॥

"तद्भवानपि मया वार्यमाणोऽपि न स्थितः ।"

तत् श्रुत्वा चक्रधर आह—"भो मित्र सत्यमेतत् । अथवा साध्विदमुच्यते—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा मित्रोक्तं न करोति यः ।
स एव निधनं याति, यथा मन्थरकौलिकः ॥ ६० ॥

अन्वयः—सारमेयस्य, अश्वस्य च विशेषतः रासभस्य प्रहारजनिता व्यथा, मुहूर्तात् परतः न स्यात् ॥ ५८ ॥

व्याख्या—सारमेयस्य = कुक्कुरस्य, अश्वस्य = घोटकस्य, विशेषतः = एतदुभयापेक्षया विशेषरूपेण, प्रहारजनिता = ताडनोत्पन्ना, मूहुर्तात्परतः = क्षणात्परा, स्यात् = न भवेत् ॥ ५८ ॥

तत इति । वृतिं चूर्णयित्वा = वृतिं विदार्य, सस्मितं = प्रहसन्, आह = अकथयत् । साधु मातुल इत्यादि पूर्वं व्याख्यातम् ।

अन्वयः—यस्य स्वयं प्रज्ञा नास्ति, यः मित्रोक्तं न करोति, स एव निधनं याति, यथा मन्थरकौलिकः ॥ ५९ ॥

व्याख्या—यस्य = पुरुषस्य, प्रज्ञा = बुद्धिः, नास्ति = न विद्यते, मित्रोक्तं = सुहृद्वचनं, निधनं = नाशमेव, याति = गच्छति, मन्थरकौलिकः = मन्थरो नाम कश्चित्तन्तुवायः, मन्दबुद्धिर्मित्रस्य वचनमुपेक्षमाणश्च पुरुषो निःसंशयं नश्यतीति भावः ॥ ५९ ॥

जाते ही वह गदहा अपने जातिगत स्वभाव के कारण उस मार को भूलकर तुरन्त खड़ा हो गया । कहा भी गया है—

हिन्दी—कुत्ते, घोड़े और विशेषकर गदहे पर किये गये प्रहार की चोट कुछ ही देर बाद नष्ट हो जाती है ॥ ५८ ॥

गदहे ने उलूखल के साथ ही खेत के घेरे को तोड़कर भागना शुरू किया । जब शृगाल ने दूर से उसे उस प्रकार भागते हुए देखा, तो मुस्कराते हुए कहा—

'वाह मामा, वाह ! मेरे बार-बार मना करने पर भी तुम बिना गीत गाये नहीं रहे । देखो, यह अतिसुन्दर मणि तुम्हारे गले में लटक रहा है । सचमुच ही तुमने अपने गीत का पुरस्कार पा लिया है ॥ ५९ ॥

हिन्दी—इस कथा को कहने के बाद सुवर्णसिद्धि बोला—आप भी मेरे मना करने पर नहीं रुके थे । यह सुनकर चक्रधर ने कहा—मित्र, तुम ठीक ही कहते हो । अथवा किसी

सुवर्णसिद्धिराह—"कथमेतत् ?" सोऽब्रवीत्—

७. मन्थरकौलिक-कथा

"कस्मिंश्चिदधिष्ठाने मन्थरको नाम कौलिकः प्रतिवसति स्म। तस्य कदाचित् पटकर्माणि कुर्वतः सर्वपटकर्मकाष्ठानि भग्नानि। ततः स कुठारमादाय वने काष्ठार्थं गतः। स च समुद्रतटे यावद्भ्रमन् प्रयातः, तावत्तत्र शिंशपापादपस्तेन दृष्टः। ततश्चिन्तितवान्—"महानयं वृक्षो दृश्यते। तदनेन कर्तितेन प्रभूतानि पटकर्मोपकरणानि भविष्यन्ति।" इत्यवधार्य तस्योपरि कुठारमुत्क्षिप्तवान्।

अथ तत्र वृक्षे कश्चिद्व्यन्तरः समाश्रित आसीत्। अथ तेनाभिहितम्—"भोः मदाश्रयोऽयं पादपः सर्वथा रक्षणीयः। यतोऽहमत्र महासौख्येन तिष्ठामि, समुद्रकल्लोलस्पर्शनाच्छीतवायुनाप्यायितः।"

कस्मिंश्चिद् इति। कौलिकः = तन्तुवायः, पट्कर्माणि=वस्त्रनिर्माणव्यापारं, सर्वपटकर्मकाष्ठानि = सम्पूर्णवस्त्रनिर्माणोपकरणानि, भग्नानि = छिन्नानि, कुठारमादाय = परशुं गृहीत्वा, तत्र=समुद्रतीरे, कर्तितेन = छिन्नेन, अवधार्य = विचार्य, तस्योपरि = पादपोपरि, उत्क्षिप्तवान् = प्रक्षिप्तवान् ,

अथेति। व्यन्तरः = वेतालः, समाश्रितः = स्थितः, अभिहितम् = कथितम्, मदाश्रयोऽयं = मम निवासभूतः, सर्वथा = सर्वतोभावेन, महासौख्येन = महता आनन्देन, समुद्रकल्लोलस्पर्शनात् = समुद्रतरङ्गस्पर्शात् , आप्यायितः = सन्तुष्टः, दारुसामग्री = काष्ठनिर्मितपटोपकरणं, कुटुम्बं = परिवारम् , अन्यत्र = वृक्षान्तरे, कर्त्तयिष्यामि =

ने ठीक ही कहा है—'जिसकी स्वयं की बुद्धि नहीं है और फिर भी जो मित्र का कहना नहीं करता, वह पुरुष मन्थर नाम के जुलाहे की तरह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ॥५८॥

सुवर्णसिद्धि बोला—यह कैसे ? उसने कहा—

मन्थरकौलिक कथा

किसी स्थान पर मन्थरक नाम का एक जुलाहा रहता था। एक दिन वस्त्र बुनते समय उसके सारे काष्ठ के औजार टूट गये। तदनन्तर वह कुल्हाड़ी लेकर वन में लकड़ी काटने के लिए घर से चल पड़ा। इधर-उधर घूमते हुए जब वह समुद्र के किनारे पहुँचा, तो उसने एक शीशम का पेड़ देखा। तब उसने सोचा—यह वृक्ष बहुत बड़ा दिखायी देता है, तो इसको काटने से बहुत से वस्त्र बुनने के औजार तैयार हो जायेंगे। ऐसा निश्चय कर उसके ऊपर कुल्हाडी से प्रहार किया।

उस वृक्ष के मध्यभाग में एक यक्ष रहता था। उसने कहा—इस वृक्ष पर मैं निवास करता हूँ, अतः तुम्हें यह नहीं काटना चाहिये; क्योंकि मैं इस वृक्ष पर बहुत सुख के साथ निवास करता हूँ और समुद्र की तरङ्गों से उठी हुई शीतल वायु का भी भोग करता हूँ।

कौलिक आह—"भोः! किमहं करोमि, दारुसामग्रीं विना मे कुटुम्बं बुभुक्षया पीड्यते। तस्मादन्यत्र शीघ्रं गम्यताम्। अहमेनं कर्त्तयिष्यामि।"

व्यन्तर आह—"भोः! तुष्टस्तवाऽहम्। तत्प्रार्थ्यतामभीष्टं किञ्चित्। रक्षैनं पादपम्" इति।

कौलिक आह—"यद्येवं तदहं स्वगृहं गत्वा स्वमित्रं, स्वभार्यां च पृष्ट्वा आगमिष्यामि, ततस्त्वया देयम्।"

अथ "तथा" इति व्यन्तरेण प्रतिज्ञाते, स कौलिकः प्रहृष्टः स्वगृहं प्रति निवृत्तो यावदग्रे गच्छति, तावद् ग्रामप्रवेशे निजसुहृदं नापितमपश्यत्। ततः तस्य व्यन्तरवाक्यं निवेदयामास-यत्—"अहो मित्र! मम कश्चिद् व्यन्तरः सिद्धः। तत्कथय किं प्रार्थये? अहं त्वां प्रष्टुमागतः।"

नापित आह—"भद्र! यद्येवं तद्राज्यं प्रार्थयस्व, येन त्वं राजा भवसि अहं त्वन्मन्त्रीः। द्वावपीह सुखमनुभूय, परलोकसुखमनुभवावः।

छेत्स्यामि, तुष्टः = प्रसन्नः, अभीष्टं = अभिलषितं वस्तु, रक्ष = पालय, ततस्त्वया देयम् = पृष्ट्वा समागते सति प्रदातव्यमिति।

अथेति। अथ = कौलिक प्रार्थनान्तरम् तथा = तथास्तु, प्रतिज्ञाते = स्वीकृते, निवृत्तः= यशवर्तितः ग्रामप्रवेशे = ग्रामसमीपे, तस्य = नापितस्य, सिद्धः = प्रसन्नः, परलोकसुखं = स्वर्गसुखं।

तब जुलाहे ने कहा—"मैं क्या करूं? काष्ठ के औजार के बिना मेरा परिवार भूख से पीड़ित है। इसलिये तुम शीघ्र ही दूसरे स्थान पर चले जाओ। मैं इसे ही काटूँगा।

यक्ष बोला—हे कौलिक, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे कोई अभीष्ट वस्तु को माँग लो और इस वृक्ष को बचा लो।

जुलाहे ने कहा—यदि ऐसी ही बात है, तो मैं अपने घर जाकर मित्र और पत्नी से पूछकर आऊँगा, तब तुम मुझे देना।

जुलाहे की इस बात को सुनकर यक्ष ने कहा "ठीक है" ऐसा कहकर उसकी बात मान ली। वह जुलाहा अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने घर की ओर लौटकर जैसे ही आगे जाता है, वैसे ही उसने गाँव के प्रवेश द्वार पर अपने मित्र नाई को देखा। तदनन्तर उसने यक्ष की बात को कह सुनाया—कि हे मित्र, मुझ पर एक यक्ष प्रसन्न हो गया है तो बताओ, मैं उससे क्या माँगू! मैं तुम्हें पूछने के लिए आया हूँ:

नाई ने कहा—मित्र, यदि ऐसी बात है तो फिर तुम राज्य माँग लो, जिससे तुम राजा हो जाओगे और मैं तुम्हारा मन्त्री बन जाऊँगा। हम दोनों ही इस लोक में सुख भोग करके परलोक के सुख का भी अनुभव करेंगे।

उक्तञ्च—

राजा दानपरो नित्यमिह कीर्तिमवाप्य च।
तत्प्रभावात्पुनः स्वर्गं स्पर्धते त्रिदशैः सह ॥ ६१ ॥

कौलिक आह—"अस्त्येतत् तथापि गृहिणीं पृच्छामि।"

स आह—"भद्र ! शास्त्रविरुद्धमेतत् यत्स्त्रिया सह मन्त्रः। यतस्ताः स्वल्पमतयो भवन्ति। उक्तञ्च—

भोजनाच्छादने दद्यादृतुकाले च सङ्गमम्।
भूषणाद्यं च नारीणां न ताभिर्मन्त्रयेत्सुधीः ॥ ६२ ॥

यत्र स्त्री, यत्र कितवो, बालो यत्र प्रशासिता।
तद्गृहं क्षयमायाति, भार्गवो हीदमब्रवीत् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—दानपरो राजा इह नित्यं कीर्तिमवाप्य तत्प्रभावात् पुनः स्वर्गं च त्रिदशैः सह स्पर्धते ॥ ६१ ॥

व्याख्या—नित्यं = सततं, दानपरः = दानं सत्पात्रे धनादिवितरणं तत्र पर=परायणः सन्, इह = भूलोके, कीर्तिमवाप्य यशोलाभं कृत्वा, तत्प्रभावात् = दानस्य सामर्थ्यात्, त्रिदशैः सह = देवैः सह, स्पर्धते = स्पर्धां करोति, देवानभिभवितुमिच्छतीत्यर्थः ॥ ६१ ॥

कौलिक इति। अस्त्येतत् = उचितमेतत्, शास्त्रविरुद्धं = शास्त्रप्रतिषिद्धं, मन्त्रः = परामर्शः, ताः = स्त्रियः, स्वल्पमतयः = अल्पबुद्धयः।

अन्वयः—नारीणां भोजनाच्छादने, ऋतुकाले च सङ्गमं, भूषणाद्यं च दद्यात्, सुधीः ताभिः न मन्त्रयेत् ॥ ६२ ॥

यत्र स्त्री, यत्र कितवः, यत्रः बालः प्रशासिता तद् गृहं क्षयम् आयाति हि इदं भार्गवः अब्रवीत् ॥ ६३ ॥

व्याख्या—नारीणां = स्त्रीणाम्, भोजनाच्छादने = अन्नवस्त्रे, ऋतुकाले=समागमयोग्ये

कहा भी है—

दानपरायण राजा इस लोक में नित्य सुख का अनुभव और यश प्राप्त करता है तथा पुनः उसी के प्रभाव से स्वर्ग में जाकर देवताओं के साथ स्पर्धा करता है अर्थात् उनके समान ही स्वर्ग का सुख भोगता है ॥ ६१ ॥

जुलाहे ने कहा—मित्र, तुम्हारी यह बात ठीक है फिर भी मैं पत्नी से भी पूछ लेता हूँ।

उसने कहा—भद्र, स्त्रियों के साथ विचार-विमर्श करना शास्त्र विरुद्ध है, क्योंकि वे मन्द बुद्धिवाली होती हैं। कहा भी है—

स्त्रियों को भोजन, वस्त्र तथा ऋतुकाल में सहवास सुख देकर प्रसन्न रखना चाहिये परन्तु विद्वान् पुरुष उससे कभी परामर्श न लें ॥ ६२ ॥

जिस घर में स्त्री, धूर्त (जुवाड़ी) और बालक ये शिक्षा देनेवाले होते हैं, वह घर नष्ट हो जाता है—ऐसा भार्गवमुनि ने कहा है ॥ ६३ ॥

तावत्स्यात्सुप्रसन्नास्यस्तावद् गुरुजने रतिः।
पुरुषो योषितां यावन्न शृणोति वचो रहः॥ ६४॥
एताः स्वार्थपरा नार्यः केवलं स्वसुखे रताः।
न तासां वल्लभः कोऽपि सुतोऽपि स्वसुखं विना॥ ६५॥

कौलिक आह—"तथाऽपि प्रष्टव्या सा मया, यतः पतिव्रता सा। अपरं, तामपृष्ट्वाऽहं न किञ्चित्करोमि।" एवं तमभिधाय सत्वरं गत्वा तामुवाच—"प्रिये! अद्याऽस्माकं कश्चिद् व्यन्तरः सिद्धः। स वाञ्छितं प्रयच्छति। तदहं त्वां प्रष्टुमा-

---

समये सङ्गमं च दद्यात्, भूषणाद्यम् आभूषणादिकं, दद्यात् = समर्पयेत्, सुधीः = विद्वान् पुरुषः, ताभिः = स्त्रीभिः, न मन्त्रयेत् = मन्त्रं गुप्तविचारं न कुर्यात्। रहस्यभङ्गभिया स्वल्पबुद्धिभिस्ताभिः सह मन्त्रणा विदुषा न कर्तव्येति भावः॥ ६३॥

यत्र = यस्मिन्गृहे, स्त्री = कान्ता, कितवः = धूर्तः, दुर्जनः, बालः = बालकः (एतेषु कोऽपि जनः) प्रशासिता = शासकः व्यवस्थापको वर्तते, क्षयं = नाशम्, याति = प्राप्नोति, इदं हि=एतत्किल वचनं, भार्गवः = शुक्राचार्यः, अब्रवीत् = अकथयत्॥ ६३॥

अन्वयः—पुरुषः यावद् रहः योषितां वचः न शृणोति तावत् सुप्रसन्नास्यः (तावद्) गुरुजने रतिः स्यात्॥ ६४॥

एता नार्यः स्वार्थपराः केवलं स्वसुखे रताः (भवन्ति) तासां कोऽपि वल्लभः न, स्वसुखं विना सुतोऽपि (वल्लभो न भवति)॥ ६५॥

व्याख्या—यावत् = यदवधिः, रहः = एकान्ते, योषितां = स्त्रीणाम्, वचः = वचनम्, तावत् = तावत्कालपर्यन्तमेव, सुप्रसन्नास्यः = प्रसन्नवदनः गुरुजने = पूज्ये लोके, रतः = अनुरक्तः॥ ६४॥

एताः नार्यः = इमाःस्त्रियः, स्वार्थपराः = परप्रयोजनमुपेक्ष्य स्वप्रयोजनसाधने मग्नाः सत्यः स्वसुखे=आत्मनः सौख्ये, रता=दत्तचित्ता भवन्ति, तासां = स्त्रीणां, वल्लभः = प्रियः, स्वसुखं विना = आत्मनः सुखं विहाय, सुतोऽपि = पुत्रोऽपि, प्रियो न भवतीत्यर्थः॥ ६५॥

कौलिक इति। तथापि = तदपि, सा = मम भार्या, पतिव्रता = पतिपरायणा, साध्वीति, अपरं = किञ्च, अपृष्ट्वा = अनुमतिं विना।

पुरुष तभी तक प्रसन्नमुख रहता है और गुरुजनों में प्रीति रखता है, जब तक कि वह एकान्त में स्त्रियों का वचन नहीं सुनता॥ ६४॥

ये स्त्रियाँ केवल स्वार्थपरायण होकर अपने ही सुख में मग्न रहती हैं। सुख के सिवा न उनका कोई पति ही है और नहीं कोई पुत्र ही होता है॥ ६५॥

जुलाहे ने कहा--ऐसा है फिर भी मुझे पूछना चाहिए क्योंकि वह पतिव्रता है। दूसरी बात यह है कि उसको बिना पूछे मैं कुछ नहीं करता हूँ। ऐसा कहकर--वह शीघ्र ही अपनी भार्या के पास जाकर बोला--प्रिये, आज हम पर कोई यक्ष प्रसन्न हुआ है। वह वरदान देना चाहता है। इसलिए मैं तुम्हें पूछने के लिये आया हूँ। तो तुम बताओ,

गतः। तत्कथय किं प्रार्थये ? एष तावन्मम मित्रं नापितो वदत्येवं यत्—"राज्यं प्रार्थयस्व"। साह—"आर्यपुत्र! का मतिर्नापितानाम् ? तन्न कार्यं तद्वचः। उक्तञ्च—

चारणैर्वन्दिभिर्नीचैर्नापितैर्बालकैरपि।
न मन्त्रं मतिमान्कुर्यात्सार्धं भिक्षुभिरेव च ॥ ६६ ॥

अपरं महती क्लेशपरम्परैषा राज्यस्थितिः, सन्धिविग्रहयानासनसंश्रयद्वैधीभावादिभिः कदाचित्पुरुषस्य सुखं न प्रयच्छतीति। यतः—

यदैव राज्ये क्रियतेऽभिषेकस्तदैव याति व्यसनेषु बुद्धिः।
घटा नृपाणामभिषेककाले सहाम्भसैवापदमुद्गिरन्ति ॥ ६७ ॥

अन्वयः—चारणैः, वन्दिभिः, नीचैः नापितैः, बालकैः अपि भिक्षुभिः एव च मतिमान् मन्त्रं न कुर्यात् ॥ ६६ ॥

व्याख्या—चारणैः = राजप्रशंसकैः, वन्दिभिः = स्तुतिपाठकैः, नीचैः = अधमैः, नापितैः = क्षुरकर्मकारिभिः, बालकैरपि = स्वल्पवयस्कैरपि, भिक्षुभिः = क्षपणकैः, मतिमान् = धीमान्, मन्त्रं न कुर्यात् = न मन्त्रयेत् ॥ ६६ ॥

अपरमिति। अपरं किञ्च, क्लेशपरम्परा = कष्टपरिपाटी, राज्यस्थितिः = राज्यव्यवस्था, सन्धिः = शत्रुभिः सन्धानम्, विग्रहं = युद्धं, यानम् = युद्धाक्रमणम्, आसनं = तत्रावस्थानम्, संश्रयः = अन्याश्रयः, द्वैधीभावः = भेदः, न प्रयच्छति = न ददाति।

अन्वयः—यदैव राज्ये अभिषेकः क्रियते तदैव व्यसनेषु बुद्धिः याति, नृणाम् अभिषेककाले एव घटा अम्भसा सह आपदम् उद्गिरन्ति ॥ ६७ ॥

मैं क्या माँगू ? यह मेरा मित्र नापित तो कहता है कि--राज्य माँग लो। उसकी पत्नी ने कहा--आर्यपुत्र, नाई की बुद्धि क्या होती है, उसका कहना नहीं करना चाहिये। कहा भी है--चारणों (नट) वन्दीजनों, (स्तुति करनेवाले भाट) नीच पुरुषों, बालकों तथा संन्यासियों से बुद्धिमान पुरुष को कभी भी सलाह नहीं लेनी चाहिये ॥ ६६ ॥

दूसरी बात यह है कि राज्य एक बड़ी भारी कष्ट परम्परा है। राज्यस्थित सन्धि (मेल) विग्रह (युद्ध) यान (आक्रमण करना) आसन (किले आदि में सुरक्षित निवास) संश्रय (किसी बलवान् राजा की सहायता लेना) द्वैधीभाव (सन्धि और विग्रह दोनों ढङ्ग से व्यवहार करना) आदि से पुरुष को कभी भी सुख नहीं मिलता।

जिस समय ही राज्य पर अभिषेक किया जाता है, उसी समय से ही बुद्धि आपत्तियों में फँस जाती है। अभिषेक के समय मानों जल से भरे हुए घड़े जल के साथ ही विपत्तियों को भी उड़ेल देते हैं ॥ ६७ ॥

तथा च—

रामस्य व्रजनं वने, निवसनं पाण्डोः सुतानां वने,
वृष्णीनां निधनं, नलस्य नृपते राज्यात्परिभ्रंशनम् ।
सौदासं तदवस्थमर्जुनवधं ; सञ्चिन्त्य लङ्केश्वरं,
दृष्ट्वा राज्यकृते विडम्बनगतं, तस्मान्न तद्वाञ्छयेत् ॥ ६८ ॥

यदर्थं भ्रातरः पुत्रा अपि वाञ्छन्ति ये निजाः ।
वधं राज्यकृतां राज्ञां, तद्राज्यं दूरतस्त्यजेत् ॥ ६९ ॥

रामस्य वने व्रजनं, पाण्डोः सुतानां वने निवसनं, वृष्णीनां निधनं, नलस्य नृपतेः राज्यात्परिभ्रंशनं, सौदासं तदवस्थम् अर्जुनवधं सञ्चिन्त्य, राज्यकृते विडम्बनगतं लङ्केश्वरं दृष्ट्वा तस्मात् तत् न वाञ्छयेत् ॥ ६८ ॥

यदर्थं, भ्रातरः, ये निजाः पुत्राः ते अपि राज्यकृतां राज्ञां वधं वाञ्छन्ति, तद् राज्यं दूरतः त्यजेत् ॥ ६९ ॥

व्याख्या—यदैव = यस्मिन्नेव काले, अभिषेकः = राज्याभिषेचनं, तदैव = तस्मिन्नेव समये, व्यसनेषु = विपत्तिषु = आपत्सु, याति = प्रवेशं कुरुते, कष्टाकुला भवतीत्यर्थः, घटाः = जलपूर्णाः कलशाः, अम्भसा सहैव = जलेन सह, आपदम् = विपत्तिम् उद्गिरन्ति = वमन्ति, निपातयन्तीत्यर्थः ॥ ६७ ॥

वने = दण्डकारण्ये व्रजनं = गमनं, पाण्डोः सुतानां = पाण्डवानां, निवसनं = स्थितिं, वृष्णीनां = यादवानां, निधनं = नाशं, परिभ्रंशनं = राज्यभ्रंशनं, सौदासं = तन्नामकमिक्ष्वाकुवंशीयं भूपतिं तदवस्थं = राक्षसयोनिगमनं, अर्जुनवधं = कार्तवीर्यार्जुनस्य नाशं, सञ्चिन्त्य = विचार्य, राज्यकृते = राज्यार्थं लङ्केश्वरं = रावणं, दृष्ट्वा = विलोक्य, तद्राज्यं न वाञ्छयेत् = नाभिलषेत् न वाञ्छां कुर्यात् । सर्वथाऽनर्थस्य कारणं राज्यं नाभिलषणीयमिति भावः ॥ ६८ ॥

यदर्थं = राज्यार्थं, भ्रातरः = सहोदराः, निजाः = स्वकीयाः पुत्रा अपि, राज्यकृतां = राज्यशासनकारिणां, राज्ञां = नृपाणां, वधं वाञ्छन्ति = प्राणान्ग्रहीतुमिच्छन्ति, तत् =

और भी—देखो, रामचन्द्रजी का घर त्याग कर वन में जाना, पाण्डु-पुत्रों (युधिष्ठिरादियों) का वन में निवास करना, वृष्णिवंशियों अर्थात् यादवों का निधन होना, राजा नल का राज्य से च्युत होना, राजा सौदास का राक्षस योनि को प्राप्त होना, सहस्रार्जुन का वध तथा लङ्काधिपति रावण की दुर्दशा आदि को सोचकर तथा राज्य के लिए ही विडम्बना को प्राप्त इन्हें देखकर, उस राज्य की इच्छा न करें ॥ ६८ ॥

[इस पद्य की संक्षिप्त पौराणिक कथा इस प्रकार है—श्रीरामचन्द्रजी को विमाता कैकयी के कारण भरत के लिए राज्य छोड़कर पिता के कहने से चौदह वर्ष तक का वनवास भोगना पड़ा । युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को उनके चचेरे भाई दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि की सहायता से जूए में हराकर तेरह वर्ष के लिए वन में भेज दिया उसमें

कौलिक आह—"सत्यमुक्तं भवत्या। तत्कथय किं प्रार्थये ?"

साह—"त्वं तावदेकं पटं नित्यमेव निष्पादयसि। तेन सर्वा व्ययशुद्धिः संपद्यते। इदानीं स्वमात्मनोऽन्यद्बाहुयुगलं द्वितीयं शिरश्च याचस्व, येन पटद्वयं संपादयसि पुरतः पृष्ठतश्च। एकस्य मूल्येन गृहे यथापूर्वं व्ययं संपादयिष्यसि, द्वितीयस्य मूल्येन विशेषकृत्यानि करिष्यसि। एवं सौख्येन स्वजातिमध्ये श्लाघ्यमानस्य कालो यास्यति, लोकद्वयस्योपार्जना च भविष्यति।"

सोऽपि तदाकर्ण्य प्रहृष्टः प्राह—"साधु प्रतिव्रते ! साधु। युक्तमुक्तं भवत्या। तदेवं करिष्यामि। एष मे निश्चयः।"

अनर्थावहं राज्यं, दूरतः = दूरादेव, त्यजेत् = मुञ्चेत्। राज्यलोभः स्वीयत्वबुद्धिं विघातयतीति। विवादास्पदं राज्यं महतेऽनर्थाय कल्पते अतस्तत्सर्वथा त्याज्यमेवेति भावः ॥६९॥

कौलिक इति। नित्यमेव = प्रत्यहं, निष्पादयसि = निश्चयसि, व्ययशुद्धिः = गृहव्ययनिर्वाहः, याचस्व = प्रार्थयस्व, यथापूर्वं = पूर्ववत् विशेषकृत्यानि = अन्यानि कार्याणि, सौख्येन = सुखेन, श्लाघ्यमानस्य = प्रशंसनीयस्य, लोकद्वयस्य = लौकिकस्य स्वर्गस्य च, उपार्जना = उपलब्धिः।

सोऽपि इति। तदाकर्ण्य = भार्यायाः वचनं श्रुत्वा, प्रहृष्टः = सुप्रसन्नः, असौ = कौलिकः, प्रार्थयाञ्चक्रे = प्रार्थयामास, ममेप्सितं मे मनोरथम्, तत्क्षणादेव = झटिति, लोकैः =

एक वर्ष तक वे अज्ञातरूप से राजा विराट् के यहाँ रहे। यदुवंशीय राजगण श्रीकृष्ण की लीला से उन्मत होकर आपस में लड़कर नष्ट हो गये। महाराजा नल अपने छोटे भाई पुष्कर से जूए में हारकर राज्य से अलग हो गये। सौदास नामक इक्ष्वाकुवंश का राजा महर्षि वसिष्ठ के शाप से राक्षस योनि को प्राप्त हुआ। कार्तवीर्य-सहस्रार्जुन को परशुरामजी ने अपने पिता का बदला लेने के लिए मार डाला। लङ्काधिपति रावण की मृत्यु भी राम से द्वेष रखने के कारण हुई—इस प्रकार इन सब ने राज्य के लिए अनेक कष्ट उठाये]

जिस राज्य के लिए अपने सगे भाई तथा पुत्र भी राजा का वध करने की इच्छा रखते हैं, उस राज्य को दूर से ही त्याग दे (उसकी इच्छा भी न करे) ॥ ६७ ॥

जुलाहे ने कहा—तुम ठीक ही कहती हो। तो बताओ, मैं उससे क्या माँगू ? वह बोली—तुम प्रतिदिन एक कपड़ा तैयार करते हो, उसीसे घर का सम्पूर्ण खर्च चलता है। इसलिए तुम दो हाथ और एक दूसरा शिर माँग लो। ऐसा करने से तुम दो कपड़े एक आगे से और एक पीछे से तैयार करोगे। एक के मूल्य से पहले की तरह घर का सब खर्च चलाओगे और दूसरे के मूल्य से दूसरे विशेष कार्य करोगे। इस प्रकार अपनी जाति के बीच खूब प्रशंसा पाते हुए सुखपूर्वक समय बीतेगा और दोनों लोकों (इहलोक और परलोक) प्राप्ति भी हो जाएगी।

कौलिक भी पत्नी की बात को सुनकर प्रसन्न होता हुआ बोला—पतिव्रते, धन्य हो, धन्य हो। तुमने ठीक ही कहा है। मैं वैसे ही करूँगा, यही मेरा निश्चय है।

ततोऽसौ गत्वा व्यन्तरं प्रार्थयाञ्चक्रे—"भो, यदि ममेप्सितं प्रयच्छसि तद्देहि मे द्वितीयं बाहुयुगलं शिरश्च।"

एवमभिहिते, तत्क्षणादेव स द्विशिराश्चतुर्बाहुश्च सञ्जातः। ततो हृष्टमना यावद् गृहमागच्छति तावल्लोकैः राक्षसोऽयमिति मन्यमानैर्लगुडपाषाणप्रहारैस्ताडितो, मृतश्च। अतोऽहं ब्रवीमि—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा मित्रोक्तं न करोति यः।
स एव निधनं याति यथा मन्थरकौलिकः॥ ७०॥

इति चक्रधर आह—भोः, सत्यमेतत्। सर्वोऽपि जनो श्रद्धेयामाशापिशाचिकां प्राप्य हास्यपदवीं याति। अथवा साध्विदमुच्यते केनाऽपि—

अनागतवतीं चिन्तामसंभाव्यां करोति यः।
स एव पाण्डुरः शेते सोमशर्मपिता यथा॥ ७१॥

जनैः, अश्रद्धेयाम् = अनादरणीयाम्, आशापिशाचिकाम् = आशारूपां पिशाचीम्, हास्यपदवीं = परिहास्यतां याति।

अन्वयः—यः अनागतवतीम् असंभाव्यां चिन्तां करोति स एव सोमशर्मपिता यथा पाण्डुरः शेते॥ ७१॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, अनागतवतीम् = अप्राप्तां भविष्यत्कालिकीमिति यावत्, असम्भाव्याम् = असाध्यां च, चिन्ताम् = विचारपरम्परां, करोति = विधत्ते, स एव = स एव मनुष्यः, पाण्डुरः = श्वेतवर्णः, प्रभाहीनः सन् शेते, दुःखमग्न उदासीनो भवतीति यावत्, यथा = तद्वत्, सोमशर्मपिता सोमशर्मेति नाम्ना सङ्केतितस्य कस्यचिच्छिशोः पिता=जनकः, स्वभावकृपणो नाम सक्तुभिः पाण्डुरतां गतवानित्यर्थः॥ ७१॥

तदनन्तर उसने यक्ष के समीप जाकर प्रार्थना की—हे यक्ष, यदि तुम मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु देना चाहते हो, तो मुझे दो हाथ और एक शिर दे दो। जुलाहे के इस प्रकार कहते ही उसके दो शिर और चार हाथ हो गये। तदनन्तर वह प्रसन्न होकर घर की ओर आने लगा तो रास्ते में ही लोगों ने "यह राक्षस है" ऐसा मानकर लाठियों और पत्थरों से मारना शुरू कर दिया और वह वहीं मर गया। इसीलिए मैं कहता हूँ—

जिसकी अपनी बुद्धि नहीं होती और जो मित्र का कहना भी नहीं मानता, वह मन्थर नामक जुलाहे की तरह मृत्यु को ही प्राप्त होता है॥ ७०॥

चक्रधर बोला—अहो, यह सत्य ही है। सभी लोग श्रद्धा के अयोग्य आशारूपी पिशाचिनी को प्राप्त कर हँसी के पात्र बनते हैं। अथवा किसी ने ठीक ही कहा है—जो भविष्य की असम्भावित चिन्ताओं का स्मरण करता है, वह सोमशर्मा के पिता के समान सफेद होकर सोता है॥ ७१॥

सुवर्णसिद्धि ने कहा – यह कैसे ?

वह बोला—

८. सोमशर्मपितृ-कथा

कस्मिंश्चिन्नगरे कश्चित्स्वभावकृपणो नाम ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म। तेन भिक्षार्जितैः सक्तुभिर्भुक्तशेषैः कलशः संपूरितः। तं च घटं नागदन्तेऽवलम्ब्य तस्याऽधस्तात्खट्वां निधाय सततमेकदृष्ट्या तमवलोकयति।

अथ कदाचिद्रात्रौ सुप्तश्चिन्तयामास—यत् परिपूर्णोऽयं घटस्तावत्सक्तुभिर्वर्त्तते। तद्यदि दुर्भिक्षं भवति, तदनेन रूप्यकाणां शतमुत्पत्स्यते। ततस्तेन मयाऽजाद्वयं ग्रहीतव्यम्। ततः षाण्मासिकप्रसववशात्ताभ्यां यूथं भविष्यति। ततोऽजाभिः प्रभूता गा ग्रहीष्यामि। गोभिर्महिषीः। महिषीभिर्वडवाः वडवाप्रसवतः प्रभूता अश्वा भविष्यन्ति। तेषां विक्रयात्प्रभूतं सुवर्णं भविष्यति। सुवर्णेन चतुःशालं गृहं सम्पत्स्यते।

कस्मिंश्चिदिति। स्वभावकृपणो नाम = स्वभावतो दीनः 'कञ्जूस' इति भाषायाम्। तेन=ब्राह्मणेन, भिक्षार्जितैः = भिक्षाप्राप्तैः, सक्तुभिः = पिष्टान्नविशेषैः, भुक्तशेषैः = भोजनावशिष्टैः, कलशः=घटः, सम्पूरितः=परिपूर्णं कृतवान्। नागदन्ते=कुड्यारोपितकाष्ठे, अवलम्ब्य= समारोप्य, तस्याधस्तात् = नागदन्तावलम्बितघटस्याधस्तात्, खट्वां=पर्यङ्कम्, एकदृष्ट्या= अनिमिषलोचनेन, तं=शक्तुपूर्णकलशम्, अवलोकयति=पश्यति, दुर्भिक्षम्=अनावृष्ट्या महार्घकालः, भवति = भविष्यतीत्यर्थः, अनेन = घटस्य सक्तुना, रूप्यकाणां शतं = शतरूप्यकम्, उत्पत्स्यते = प्राप्स्यते, अजाद्वयम् = छागमिथुनम्, ग्रहीतव्यम् = क्रेतव्यम्, षाण्मासिकप्रसववशात् = प्रतिषण्मासानन्तरशिशुजननवशात्, ताभ्यां = छागाभ्यां, यूथं भविष्यति = समूहो भविष्यति, प्रभूताः = प्रचुराः, चतुःशालं = चतुःखण्डयुक्तम्, सम्पत्स्यते= निर्मीयत इत्यर्थः।

सोमशर्मपितृ-कथा

किसी नगर में एक स्वभावकृपण नामका ब्राह्मण रहता था। उसने भिक्षा से प्राप्त, खाने के बाद बचे हुए बहुत से सत्तू से एक घड़ा भर कर रखा था। वह उस घड़े को खूंटी पर टाँगकर उसके नीचे खटिया बिछाकर सोते हुए निरन्तर एक दृष्टि से देखा करता था।

एक दिन सोते हुए उसने विचार किया—यह घड़ा सत्तू से पूरा भरा हुआ है। यदि अकाल पड़ जाता तो उसे बेचने से सौ रुपये मिल जाते। उन रुपयों से मुझे दो बकरियाँ खरीदनी चाहिए। फिर उन बकरियों से छः मास पर बच्चे होंगे और मेरे पास बकरियों का एक झुण्ड हो जाएगा। उन बकरियों से बहुत सी गायें खरीदूंगा, फिर गौओं से भैंसें और भैंसों से घोड़ियाँ खरीदूंगा। तब उन घोड़ियों के प्रसव होने से बहुत से घोड़े पैदा होंगे। उनको बेचने से मेरे पास खूब सुवर्ण हो जाएगा। सोने से चतुःशाल घर तैयार होगा।

ततः कश्चिद् ब्राह्मणो मम गृहमागत्य प्राप्तवयस्कां रूपाढ्यां कन्यां मह्यं दास्यति। तत्सकाशात्पुत्रो मे भविष्यति। तस्याऽहं "सोमशर्मा" इति नाम करिष्यामि। ततस्तस्मिञ्जानुचलनयोग्ये सञ्जातेऽहं पुस्तकं गृहीत्वाऽश्वशालायाः पृष्ठदेशे उपविष्टस्तदवधारयिष्यामि। अत्रान्तरे सोमशर्मा मां दृष्ट्वा; जनन्युत्सङ्गाज्जानुचलनपरोऽश्वखुरासन्नवर्ती मत्समीपमागमिष्यति। ततोऽहं ब्राह्मणीं कोपाविष्टोऽभिधास्यामि—"गृहाण तावद् बालकम्।" सोऽपि गृहकर्मव्यग्रतयाऽस्मद्वचनं न श्रोष्यति। ततोऽहं समुत्थाय, तां पादप्रहारेण ताडयिष्यामि।

एवं तेन ध्यानस्थितेन तथैव पादप्रहारो दत्तो यथा स घटो भग्नः, स्वयञ्च सक्तुभिः पाण्डुरतां गतः। अतोऽहं ब्रवीमि—

अनागतवतीं चिन्तामसम्भाव्यां करोति यः।
स एव पाण्डुरः शेते शोमशर्मपिता यथा ॥ ७२ ॥ इति ॥

ततो इति। प्राप्तवयस्कां = युवतीम्, रूपाढ्यां = रूपवतीम्, दास्यति = विवाहे प्रदास्यति, तस्य = नवजातस्वकीयस्य, तस्मिन् = सोमशर्मणि, जानुचलनयोग्ये = उरुजङ्घयोर्मध्यभागेन गमनसमर्थे, पृष्ठदेशे = पृष्ठभागे, तदवधारयिष्यामि=तस्य प्रतीक्षां करिष्यामि, जनन्युत्सङ्गात् = मातुः क्रोडात्, जानुप्रचलनपरः=जानुभ्यां चलनयोग्यः, अश्वखुरासन्नवर्ती = अश्वपादनिकटचरः, कोपाविष्टः=क्रुद्धायमानः, अभिधास्यामि = कथयिष्यामि, गृहकर्मव्यग्रतया = गृहकार्यप्रसक्तया, अस्मद्वचनं=ममाज्ञां, समुत्थाय = उत्थाय, ध्यानस्थितेन = विचारमग्नेन, तेन = स्वभावकृपणनाम्ना ब्राह्मणेन, भग्नः = त्रुटितः, पाण्डुरतां = श्वेततां, सक्तुभिरासिक्तशरीर इत्यर्थः गतः = प्राप्तः।

इसके बाद कोई ब्राह्मण मेरे घर आकर युवावस्था को प्राप्त हुई रूपवती कन्या से मेरा विवाह कर देगा। उसके गर्भ से एक पुत्र होगा जिसका नाम मैं सोमशर्मा रखूँगा। जब वह घुटनों के बल चलने लायक होगा तब मैं पुस्तक लेकर उसकी प्रतीक्षा में घुड़शाल के पीछे जाकर बैठूँगा। सोमशर्मा वहाँ मुझे बैठा हुआ देखकर अपनी माँ की गोद से उतरकर मेरे पास आने के लिए घुटनों के बल चलता हुआ घोड़ों के खुरों के पास से होकर मेरे पास आयेगा। तब मैं क्रोध में भरकर ब्राह्मणी से कहूँगा—'बालक को पकड़'। तब वह भी घर के काम में व्यस्त रहने से मेरी बात को नहीं सुनेगी। तब मैं उठकर उसे लात से मारूँगा।

इस प्रकार ध्यानमग्न होते हुए उसने इस प्रकार लात चलायी कि घड़ा फूट गया और वह ब्राह्मण सत्तू से सफेद हो गया। इसीलिए मैं कहता हूँ—जो अनागत इत्यादि।

सुवर्णसिद्धिराह—एवमेतत्। कस्ते दोषः। यतः सर्वोऽपि लोभेन विडम्बितो बाध्यते। उक्तञ्च—

यो लौल्यात्कुरुते कर्म नैवोदर्कमवेक्षते।
विडम्बनामवाप्नोति स यथा चन्द्रभूपतिः॥ ७३॥

चक्रधर आह—'कथमेतत्?' स आह—

९. चन्द्रभूपति-कथा

कस्मिंश्चिन्नगरे चन्द्रो नाम भूपतिः प्रतिवसति स्म। तस्य पुत्रा वानरक्रीडारता वानरयूथं नित्यमेवाऽनेकभोजनभक्ष्यादिभिः पुष्टिं नयन्ति स्म। अथ वानरयूथाऽधिपो यः स औशनस-बार्हस्पत्य-चाणक्य-मतवित्, तदनुष्ठाता च तत्सर्वानप्याऽध्यापयति स्म।

सुवर्णसिद्धि इति। कस्ते दोषः = न कोपि दोषो भवतः, विडम्बितः = तिरस्कृतः, बाध्यते = पीड्यते।

अन्वयः—यः लौल्यात्कर्म कुरुते, उदर्कं न अवेक्षते स विडम्बनाम् अवाप्नोति यथा चन्द्रभूपतिः (प्राप्तवान्)॥ ७३॥

व्याख्या—यः = पुरुषः, लौल्यात् = चञ्चलतया, उदर्कम् = कर्मफलम्, न अवेक्षते = न पूर्वं पर्यालोचयति, विडम्बनामवाप्नोति = वञ्चनां लभते, लोकेन प्रतारितो भवतीत्यर्थः, चन्द्रभूपतिः = चन्द्रो नाम कश्चिद्राजा विडम्बनां प्राप्तवान्। परिणामं सम्यग्विचार्यैव कार्यं करणीयमिति भावः॥ ७३॥

कस्मिंश्चिदिति। वानरक्रीडारताः = मर्कटैः सह क्रीडानुरक्ताः, वानरयूथं = वानरसमूहम्, अनेकभोजनभक्ष्यादिभिः = नानाभोज्यपदार्थैः, पुष्टिं नयन्ति स्म = पालयन्ति स्म, वानरयूथाधिपः = मर्कटवृन्दाधीशः, औशनसम् = भार्गवमुनिप्रोक्तं, बार्हस्पत्यं = बृहस्पतिरचितं नीतिशास्त्रं, चाणक्यमतवित् = चाणक्यप्रोक्तं राजनीतिशास्त्रं च तेषां ज्ञाता, सकलनीतिशास्त्रकुशलः तदनुष्ठाता = नीतिसंमताचरणशीलः, तत्सर्वान् = तान्

सुवर्णसिद्धि ने कहा—यह ऐसा ही है, तुम्हारा इसमें क्या दोष? सभी लोग लालच के वशीभूत होकर कष्ट को भोगते हैं। कहा भी है—

जो चञ्चलता से कार्य करता है और आगे होने वाले परिणाम को नहीं देखता, वह वैसे ही ठगा जाता है जैसे कि चन्द्र नाम का राजा॥ ७३॥

चक्रधर ने कहा—यह कैसे? वह बोला—

चन्द्रभूपति-कथा

किसी नगर में चन्द्र नाम का राजा रहता था। उसके बच्चे बन्दरों के साथ खेल में लगे रहते थे और बन्दरों के झूण्ड को प्रतिदिन भोजनादि खाद्य पदार्थों को देकर पुष्ट करते थे। बन्दरों के झूण्ड का जो नेता था, वह शुक्राचार्य, बृहस्पति और चाणक्य की नीति को जानने वाला था और उसके अनुसार कार्य करता था। वह उन सब दूसरे बन्दरों को भी पढ़ाता था।

अथ तस्मिन् राजगृहे लघुकुमारवाहनयोग्यं मेषयूथमस्ति। तन्मध्यादेको जिह्वालौल्यादहर्निशं निःशङ्कं महानसे प्रविश्य यत्पश्यति, तत्सर्वं भक्षयति। ते च सूपकारा यत्किञ्चित्काष्ठं, मृन्मयं भाजनं, कांस्यपात्रं, ताम्रपात्रं वा पश्यन्ति, तेनाशु ताडयन्ति।

सोऽपि वानरयूथपस्तद् दृष्ट्वा व्यचिन्तयत्—"अहो, मेषसूपकारकलहोऽयं वानराणां क्षयाय भविष्यति। यतोऽन्नरसास्वादलम्पटोऽयं मेषो, महाकोपाश्च सूपकारा यथासन्नवस्तुना प्रहरन्ति। तद्यदि वस्तुनोऽभावात्कदाचिदुल्मुकेन ताडयिष्यन्ति, तदोर्णाप्रचुरोऽयं मेषः स्वल्पेनाऽपि वह्निना प्रज्वलयिष्यति। तद्-ह्यमानः पुनरश्वकुट्यां समीपवर्तिन्यां प्रवेक्ष्यति। साऽपि तृणप्राचुर्याज्ज्वलिष्यति। ततोऽश्वा वह्निदाहमवाप्स्यन्ति।

वानरान्, लघुकुमारवाहनयोग्यं = कनिष्ठा ये राजकुमारास्तेषां वाहनं तस्य योग्यम्, अल्पकायमिति भावः, तन्मध्यात् = यूथमध्यात्, जिह्वालौल्यात् = रसनाचापल्यात्, अह-र्निशम् = प्रतिदिनं, निःशङ्कं = निर्भयम्, महानसे = भोजनालये, सूपकाराः = पाचकाः यत्किञ्चित् काष्ठं = इन्धनम्, मृन्मयं = मृत्तिकानिर्मितं, आशु = शीघ्रमेव, ताडयन्ति= घ्नन्ति स्म।

सोऽपि इति। तद्दृष्ट्वा = मेषसूपकारयोर्विवादं दृष्ट्वा, कलहः = विवादः, क्षयाय = नाशाय, अन्नास्वादलम्पटः = अन्नभोजनलोलुपः, यथासन्नवस्तुना = निकटस्थपदार्थेन, तत् यदि = यदा कदाचित् उल्मुकेन = ज्वलत्काष्ठेन, ऊर्णाप्रचुरः = लोमबहुलः, अश्वकुट्यां = अश्वशालायाम्, प्रवेक्ष्यति = प्रवेशं करिष्यति, सापि = अश्वशालापि, तृणप्राचुर्यात् = तृण-बाहुल्यात् वह्निदाहमवाप्स्यन्ति = अग्नितापं प्राप्स्यन्ति, शालिहोत्रेण = अश्वचिकित्सकेन महर्षिणा, वानरवसया = मर्कटमेदसा, वह्निदाहदोषः = अग्निदाहजन्यदोषः, एते भाव्यम् = अवश्यमेवेयं घटना भविष्यति, रहसि = एकान्ते, प्रोवाच = उवाच।

उस राजभवन में छोटे राजकुमारों की सवारी के लिए भेड़ों का एक झूण्ड पाला हुआ था। उनमें से एक भेड़ा जीभ की चञ्चलता के कारण रात दिन जब भी अवसर पाता था निडर होकर रसोई घर में घुस जाता था और जो कुछ देखता सब खा जाता था। रसोइये भी उस समय जो लकड़ी का, मिट्टी का, काँसे का अथवा ताँबे का पात्र देखते थे, उसे लेकर शीघ्र मार देते थे।

वह बन्दरों के झूण्ड का सरदार भी यह देखकर सोचने लगा—अहो, भेड़े और रसोइयों का यह झगड़ा बन्दरों के नाश का कारण होगा। क्योंकि यह भेड़ा अन्न का स्वाद लेने में लोभी है और ये रसोइये भी बड़े क्रोधी हैं। जो भी चीज सामने आ जाती है उसी से उस पर प्रहार कर देते हैं। यदि किसी समय इन्हें मारने के लिए कोई वस्तु हाथ न लगी तो अवश्य ही ये जलती हुई लकड़ी फेंककर मारेंगे। उसका शरीर बहुत ऊनवाला है, तो थोड़ी सी भी आग से जल उठेगा। वह जलता हुआ पास में

शालिहोत्रेण पुनरेतदुक्तं यत्—"वानरवसयाऽश्वानां वह्निदाहदोषः प्रशाम्यति," तन्नूनमेतेन भाव्यम्। एषोऽत्र निश्चयः एवं निश्चित्य सर्वान् वानरानाहूय रहसि प्रोवाच यत्—

मेषेण सूपकाराणां कलहो योऽत्र जायते।
स भविष्यत्यसंदिग्धं वानराणां क्षयावहः॥ ७४॥

तस्मात् स्यात् कलहो यत्र गृहे नित्यमकारणः।
तद्गृहं जीवितं वाञ्छन् दूरतः परिवर्जयेत्॥ ७५॥

तथा च—

कलहान्तानि हर्म्याणि कुवाक्यान्तं च सौहृदम्।

अन्वयः—अत्र यः मेषेण (सह) सूपकाराणां कलहः जायते, स असन्दिग्धं वानराणां क्षयावहः भविष्यति॥ ७४॥

व्याख्या—यत्र = स्थाने, मेषेण = एणकेन, सूपकाराणां = सूदानां, जायते = भवति, असंदिग्धं = निःसंशयं, सः = कलहः, वानराणां = मर्कटानां, क्षयावहः = विनाशं करिष्यतीत्यर्थः। मेषसूपकारयोः कलहान्नूनं वानराः विनश्यन्तीति भावः॥ ७४॥

अन्वयः—तस्मात् यत्र गृहे नित्यं अकारणः कलहः स्याद् तत् गृहं जीवितं वाञ्छन् दूरतः परिवर्जयेत्॥ ७५॥

हर्म्याणि कलहान्तानि, सौहृदं च कुवाक्यान्तं, राष्ट्राणि कुराजान्तानि, नृणां यशः कुकर्मान्तं भवति॥ ७६॥

व्याख्या—तस्मात् = पूर्वोक्तकारणात्, यत्र गृहे = यस्मिन्सदने, नित्यं = निरन्तरम्, अकारणः = व्यर्थः, कलहः स्यात् = विवादो भवेत्, जीवितं वाञ्छन् = जीवनमभिलषन् पुरुषः, दूरतः = दूरात्, परिवर्जयेत् = त्यजेत्। कलहस्थले जिजीविषुभिः पुरुषैर्न स्थातव्यमिति भावः॥ ७५॥

हर्म्याणि = गृहाणीति यावत्, कलहान्तानि = विवादान्तानि, सौहृदम् = सख्यम्,

---

घुड़शाला में घुस जाएगा। यह घुड़शाला भी घास की अधिकता के कारण जल उठेगी और बहुत से घोड़े आग की लपट में आ जायेंगे। (अश्व चिकित्सक) शालिहोत्र ने यह कहा भी है कि "वानर की चरबी से घोड़ों के जलने का घाव ठीक हो जाता है" और यह घटना अवश्य ही होगी, ऐसा निश्चित जान पड़ता है। इस प्रकार निश्चिय कर सब वानरों को बुलाकर एकान्त में बोला—

जहाँ भेड़ के साथ रसोइयों का झगड़ा होता है, वह निश्चित ही वानरों के विनाश का कारण होता है॥ ७४॥

इसलिए जिस घर में रोज अकारण ही झगड़ा होता हो, उस घर को जीने की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति दूर से ही त्याग दे॥ ७५॥

और भी—कलह के कारण अच्छे-अच्छे भवन नष्ट हो जाते हैं। कटु वचनों से

कुराजान्तानि राष्ट्राणि कुकर्मान्तं यशो नृणाम् ॥ ७६ ॥

तन्न यावत्सर्वेषां संक्षयो भवति, तावदेवैतद्राजगृहं संत्यज्य वनं गच्छामः । अथ तत्तस्य वचनमश्रद्धेयं श्रुत्वा मदोद्धता वानराः प्रहस्य प्रोचुः—"भो! भवतो वृद्धभावाद् बुद्धिवैकल्यं सञ्जातं, येनैतद् ब्रवीषि । उक्तञ्च—

वदनं दशनैर्हीनं, लाला स्रवति नित्यशः ।
न मतिः स्फुरति क्वापि बाले वृद्धे विशेषतः ॥ ७७ ॥

न वयं स्वर्गसमानोपभोगान्नानाविधान्भक्ष्यविशेषान् राजपुत्रैः स्वहस्तदत्तानमृतकल्पान् परित्यज्य तत्राऽटव्यां कषायकटुतिक्तक्षाररूक्षफलानि भक्षयिष्यामः ।"

मैत्री, कुवाक्यान्तं = कुत्सितेन वाक्येन-वचनेन अन्तो विनाशो यस्य, राष्ट्राणि = राज्यानि, कुराजान्तानि = कुत्सितेन राज्ञा दुष्टभूपतिनां हेतुना अन्तो नाशो यषां तानि, (जायन्ते) नृणां = मनुष्याणाम् , यशः = कीर्तिः, कुकर्मान्तं = कुकर्मणां नोचकार्येण अन्तो नाशो यस्य तादृशं (भवति) कलहेन गृहाणि, कुवाक्येन स्नेहो, दुष्टेन राज्ञा देशाः, अशुभकर्मणा नराणां यशश्च नश्यतीति भावः ॥ ७६ ॥

तन्न इति । संक्षयः = विनाशः, सन्त्यज्य = त्यक्त्वा, तस्य = वानराधिपस्य, अश्रद्धेयं = अविश्वसनीयम् , मदोद्धताः = मदमत्ताः, वृद्धभावात् = वार्धक्यात्, बुद्धिवैकल्यं = मतिविभ्रमः, सञ्जातं = अभूत्, येन = हेतुना, ब्रवीषि = कथयसि ।

अन्वयः—दशनैः हीनं वदनं, नित्यशः बाले लाला स्रवति, विशेषतः वृद्धे, क्वापि मतिः न स्फुरति ॥ ७७ ॥

व्याख्या—दशनैः हीनं=दन्तैर्विहीनम्, वदनं = मुखम् , नित्यशः = सर्वदा, लाला = स्यन्दिनी जलमिति यावत् स्रवति = निस्सरति, बाले वृद्धे = बालकानां वृद्धानां, बाल्यकाले वृद्धत्वे च विशेषतः = विशेषरूपेण, क्वापि=कस्मिन्नपि विषये, मतिः न स्फुरति = न प्रवर्तते नष्टमतयो भवन्तीत्यर्थः ॥ ७७ ॥

न वयमिति । स्वर्गसमानोपभोगान् = स्वर्गसदृशसुखभोगान् , स्वहस्तदत्तान् = निज करप्रदत्तान् , अमृतकल्पान् = सुधासदृशास्वादनान् , अटव्याम् = अरण्ये, कषायकटु-

---

मित्रता का, दुष्ट राजा के कारण राष्ट्र का और कुकर्मों से मनुष्यों के यश का नाश हो जाता है ॥ ७६ ॥

इसलिए जब तक हम सब का नाश नहीं होता, तब तक इस राजभवन को छोड़कर वन में चले जाते हैं । तब विश्वास के अयोग्य यूथपति के इस वचन को सुनकर मदोद्धत वानरों ने हँसी उड़ाते हुए कहा—वृद्धावस्था के कारण आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, इसीलिए ऐसा कह रहे हो । कहा भी है—बालक के और वृद्ध के मुख में दाँत नहीं होते अतः निरन्तर लार टपकती रहती है अतः बालक में और विशेषकर वृद्ध की बुद्धि कहीं भी स्फुटित नहीं होती ॥ ७७ ॥

हमलोग राजकुमारों ने अपने हाथों से दिये हुए स्वर्ग के समान सुखभोग दायक

तच्छ्रुत्वाऽश्रुकलुषां दृष्टिं कृत्वा स प्रोवाच—"रे रे मूर्खाः! यूयमेतस्य सुखस्य परिणामं न जानीथ। किं न पापरसास्वादनप्रायमेतत्सुखं परिणामे विषवद् भविष्यति। तदहं कुलक्षयं स्वयं नावलोकयिष्यामि। साम्प्रतं वनं यास्यामि। उक्तञ्च—

मित्रं व्यसनसम्प्राप्तं स्वस्थानं परपीडितम्।
धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम् ॥ ७८ ॥

एवमभिधाय सर्वास्तान् परित्यज्य स यूथाधिपोऽटव्यां गतः। अथ तस्मिन्यातेऽन्यस्मिन्नहनि स मेषो महानसे प्रविष्टो, यावत्सूपकारेण नान्यत्किञ्चित्समासादितं तावदर्धज्वलितकाष्ठेन ताड्यमानो जाज्वल्यमानशरीरः शब्दायमानोऽश्वकुट्यां प्रत्यासन्नवर्तिन्यां प्रविष्टः।

तिक्तक्षाररुक्षफलानि = विविधानि स्वादरहितानि, अश्रुकलुषां दृष्टिम्=अश्रुपूर्णनेत्रम्, सः = वानराधिपः, परिणामं = विपाकं, पापरसास्वादनप्रायं = पापकृतफलास्वादतुल्यं, एतत्सुखं = सुखादुफलमूलमिष्टान्नभोजनादिसुखम्, साम्प्रतम् = इदानीम्।

अन्वयः—व्यसनसंप्राप्तं मित्रं, परपीडितं स्वस्थानं देशभङ्गं कुलक्षयं च ये न पश्यन्ति ते धन्याः (भवन्ति) ॥ ७८ ॥

व्याख्या—व्यसनसंप्राप्तं = कष्टे पतितं, आपद्ग्रस्तमिति यावत्, परपीडितं = शत्रुसमाक्रान्तं, स्वस्थानं = स्वनिवासस्थानं, देशभंगं =देशस्य विध्वंसं, कुलक्षयं = कुलविनाशं, धन्याः = धन्यवादार्हाः सन्ति ॥ ७८ ॥

एवमिति। एवमभिधाय = पूर्वोक्तं वाक्यमुक्त्वा, तान् = वानरान्, गते = वनं प्राप्ते सति, अन्यस्मिन्नहनि = कस्मिंश्चित् दिने, समासादितम् = प्राप्तम्, अर्धज्वलितकाष्ठेन = उल्मुकेन, जाज्वल्यमानशरीरः = प्रज्वलितगात्रः, शब्दायमानः = शब्दं कुर्वन्,

---

अनेक प्रकार के अमृततुल्य भक्ष्य पदार्थों को छोड़कर वन में कसैले, कड़ुवे, तीते, खारे और रूखे फलों को नहीं खायेंगे।

वानरों की ऐसी बात सुनकर आखों में आँसू भरकर वह यूथपति बोला—अरे, मूर्खो! तुम लोग इस सुख के परिणाम को नहीं जानते हो। पाप रस के आस्वादन के समान यह सुख परिणाम में विष के समान नहीं होगा? मैं अपने कुल का नाश स्वयं नहीं देखना चाहता। इसलिए मैं वन चला जाऊँगा। कहा भी है—

विपत्ति में पड़े हुए मित्र को, शत्रुओं से आक्रान्त अपने देश को, तथा देश के ध्वंस को एवं कुल को विनाश को जो लोग नहीं देखते है वे धन्य हैं ॥ ७८ ॥

इस प्रकार कहकर वह यूथपति उन सब वानरों को छोड़कर जङ्गल में चला गया। उसके चले जाने के बाद दूसरे दिन वह भेड़ा पुनः रसोइघर में घुस गया। जब रसोइये को मारने के लिए कोई वस्तु न मिली, तो आधी जली हुई लकड़ी उस पर फेंककर

तत्र तृणप्राचुर्ययुक्तायां चितौ तस्य प्रलुठतः सर्वत्राऽपि वह्निज्वालास्तथा समुत्थिता, यथा केचिदश्वाः स्फुटितलोचनाः पञ्चत्वं गताः। केचिद् वन्धनानि त्रोटयित्वा अर्धदग्धशरीरा इतश्चेतश्च ह्रेषायमाणा धावमानाः, सर्वमपि जन-समूहमाकुलीचक्रुः।

अत्रान्तरे राजा सविषादः शालिहोत्रज्ञान् वैद्यानाहूय, प्रोवाच—"भोः! प्रोच्य-तामेषामश्वानां कश्चिद्दाहोपशमनोपायः।" तेऽपि शास्त्राणि विलोक्य प्रोचुः—"देव! प्रोक्तमत्र विषये भवता शालिहोत्रेण, यत्—

कपीनां मेदसा दोषो वह्निदाहसमुद्भवः।
अश्वानां नाशमभ्येति तमः सूर्योदये यथा॥ ७९॥

प्रत्यासन्नवर्तिन्यां = पार्श्वस्थितायां, क्षितौ = पृथिव्यां, प्रलुठतः = पार्श्वपरिवर्तनं कुर्वतः, समुत्थिता = उत्थिता, स्फुटितलोचनाः = विस्फारितनेत्राः, पञ्चत्वं = निधनं, बन्धनानि = बन्धनसूत्राणि, त्रोटयित्वा = खण्डयित्वा, ह्रेषायमाणाः = शब्दायमानाः, आकुलीचक्रुः = व्याकुलयामासुः।

अत्र इति। अत्रान्तरे = अवसरेऽस्मिन्, दाहोपशमननोपायः = अग्निदाहनाशकोपायः, तेऽपि = चिकित्सकाः, प्रोचुः = कथितवन्तः, अत्र विषये = अश्वानामग्निदाहावसरे, शालि-होत्रेण = तन्नाम्ना महर्षिणा।

अन्वयः—अश्वानां वह्निदाहसमुद्भवः दोषः कपीनां मेदसा नाशम् अभ्येति, यथा सूर्योदये तमः (नाशमभ्येति)॥ ७९ ॥

व्याख्या—वह्निदाहसमुद्भवः = अग्नेः सन्तापादुत्पन्नः, दोषः = विकारः, कपीनां = मर्कटानां, मेदसा = वसया, नाशमभ्येति=शाम्यति तयैव चिकित्सा सम्भाव्या इति॥ ७९ ॥

मारी जिससे उसका शरीर तुरन्त जलने लगा और चिल्लाता हुआ पास के घुड़शाल में घुस गया।

वहाँ घास से भरी जमीन पर उसके लोटने के कारण चारों ओर आग की लपटें उठने लगी जिससे कुछ घोड़ों की आँखें फूट गयीं और वहीं मर गये। कुछ खूंटी तोड़कर आधे शरीर से जलकर इधर-उधर हिनहिनाते हुए भागने लगे। ऐसा देखकर सब लोग व्याकुल हो उठे।

इस समाचार से दुःखी होकर राजा ने तत्काल अश्वचिकित्सकों को बुलवाया और कहा—हे वैद्यो, आप इन अश्वों की जलन को शान्त करने का कोई उपाय बतावें। उन चिकित्सकों ने भी वैद्यकशास्त्रों पर विचार करके कहा—राजन्, इस विषय में भगवान् शालिहोत्र ने बताया है कि—

घोड़ों की आग से जलने से उत्पन्न हुआ दाह वानरों की चरबी से इस प्रकार नष्ट होता है, जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है॥ ७९॥

तत्क्रियतामेतच्चिकित्सितं द्राक्, यावदेतेन दाहदोषेण विनश्यन्ति। सोऽपि तदाकर्ण्य समस्तवानरवधमादिष्टवान्। किं बहुना—सर्वेऽपि ते वानरा विविधायुधलगुडपाषाणादिभिर्व्यापादिता इति।

अथ सोऽपि वानरयूथपस्तं पुत्रपौत्रभ्रातृसुतभागिनेयादिसंक्षयं ज्ञात्वा विषादमुपगतः, सन्त्यक्ताहारक्रियो वनाद्वनं पर्यटति। अचिन्तयच्च—"कथमहं तस्य नृपापसदस्यानृणतां कृत्येनाऽपकृत्यं करिष्यामि। उक्तञ्च—

> मर्षयेद्धर्षणां योऽत्र वंशजां परनिर्मिताम्।
> भयाद्वा यदि वा कामात् स ज्ञेयः पुरुषाऽधमः॥ ८०॥

अथ तेन वृद्धवानरेण कुत्रचित्पिपासाकुलेन भ्रमता पद्मिनीखण्डमण्डितं सरः

तत् इति। एतत् चिकित्सितं = औषधप्रयोगः, द्राक् = शीघ्रम्, सोऽपि = राजाऽपि, तदाकर्ण्य = तेषां वचनं श्रुत्वा, आदिष्टवान् = आज्ञापयामास, व्यापादितः = हताः, पुत्रपौत्रभ्रातृसुतभागिनेयादिसंक्षयं = स्वकुलविनाशं, ज्ञात्वा = अवगम्य, संत्यक्ताहारक्रियः = भोजनं विहाय, पर्यटति = अटति, भ्रमति। नृपापसदस्य = दुष्टस्य, अनृणताकृत्येन = स्ववंशविनाशसम्भूतऋणस्य परिशोधनक्षमकार्येण अपकृत्यं = अपकारम्।

अन्वयः—यः अत्र भयात् यदि वा कामात् परनिर्मितां वंशजां धर्षणां मर्षयेत् स पुरुषाधमः ज्ञेयः॥ ८०॥

व्याख्या—यः = पुमान्, अत्र = संसारे, भयात् = भयकारणात्, कामात् = अभिलाषवशात् केनाप्यभिप्रायेणेति यावत्, परनिर्मितां=शत्रुकृतां, वंशजां = कुलोद्भवां, धर्षणां = पराभवं, मर्षयेत् = क्षमां करोति, पुरुषाधमः = नराधमः, ज्ञेयः = ज्ञातव्यः, कुलस्यापमानं नीचपुरुषा एव सहन्त इति भावः॥ ८०॥

अथेति। पिपासाकुलेन = तृषातुरेण, पद्मिनीमण्डितं = कमलसमूहभूषितम्, समा-

---

इसलिए शीघ्र ही ऐसी चिकित्सा कीजिए, जबतक कि ये दाह दोष नष्ट न हो जायँ (अर्थात् अग्निदाह से घोड़े मर न जाय इसलिए शीघ्र दवा करो) राजा ने भी यह सुनकर समस्त वानरों को मार देने के लिए आदेश दे दिया। अधिक क्या कहें, वे सभी वानर अनेक प्रकार के शस्त्रों, लाठियों और पत्थरों से मार डाले गये।

तब वह वानरों का यूथपति पुत्र, पौत्र, भतीजे, भाँजे आदि के विनाश को सुनकर अत्यन्त दुःखी होने लगा तथा भोजनादि क्रिया को छोड़कर एक वन से दूसरे वन में भटकने लगा। और वह सोचने लगा कि—मैं उस नीच राजा से अपने कुल के नाश का बदला लेकर अपकार कैसे करूँ? कहा भी है—

जो व्यक्ति संसार में भय के कारण अथवा लोभ के कारण दूसरे के द्वारा उत्पन्न किये गये कुल के तिरस्कार को सह लेता है, उसे पुरुषो में अधम जानना चाहिये॥ ८०॥

अनन्तर वह वृद्ध वानर किसी स्थान पर प्यास से व्याकुल होकर घूमते हुये कमलिनी-समूह से विराजित एक सरोवर पर पहुँचा। उसने जब सूक्ष्म दृष्टि से देखा तो

समासादितम् । तद्यावत्सूक्ष्मेक्षिकयाऽवलोकयति तावद् वनचरमनुष्याणां पदपङ्क्तिप्रवेशोऽस्ति न निष्क्रमणम् । ततश्चिन्तितम् "नूनमत्र जलान्ते दुष्टग्राहेण भाव्यम् । तत्पद्मिनीनालमादाय दूरस्थोऽपि जलं पिबामि ।"

तथाऽनुष्ठिते तन्मध्याद्राक्षसो निष्क्रम्य, रत्नमालाविभूषितकण्ठस्तमुवाच—"भोः ! अत्र यः सलिले प्रवेशं करोति स मे भक्ष्यः इति । तन्नाऽस्ति धूर्ततरस्त्वत्समोऽन्यो यः पानीयमनेन विधिना पिबति । ततस्तुष्टोऽहं, प्रार्थयस्व हृदयवाञ्छितम् ।"

कपिराह—"भोः ! कियती ते भक्षणशक्तिः ?" स आह—"शतसहस्रायुतलक्षाण्यपि जलप्रविष्टानि भक्षयामि बाह्यतः श्रृगालोऽपि मां धर्षयति ।"

वानर आह—अस्ति मे केनचिद् भूपतिना सहाऽत्यन्तं वैरम् । यद्येनां रत्नमालां मे प्रयच्छसि, तत्सपरिवारमपि तं भूपतिं वाक्यप्रपञ्चेन लोभयित्वाऽत्र सरसि प्रवेशयामि ।

सादितम् = अवाप्तम्, सूक्ष्मेक्षिकया = सूक्ष्मदृष्ट्या, पदपंक्तिप्रवेशः = गमनस्य चिह्नम्, अस्ति, अनिष्क्रमणं = न च निर्गमः, जलान्ते = जलमध्ये, भाव्यम् = भवितव्यम्, पद्मिनीनालं = कमलिनीदण्डम्, दूरस्थोऽपि = वहिः स्थितः सन् , निष्क्रम्य = वहिरागत्य, धूर्त्ततरः = अतिधूर्तः, हृदयवाञ्छितम् = मनोऽभिलषितम् , अयुतं = दशसहस्रं, धर्षयति =

वहाँ सरोवर में प्रवेश करनेवाले जीवों के पादचिह्न दिखाई पड़े किन्तु उनके निकलने का कोई चिह्न नहीं जान पड़ा । यह देखकर उसने सोचा कि "निश्चय ही इस सरोवर के भीतर कोई दुष्ट मगर रहता है । अतः मैं उससे दूर रहते हुए ही कमलिनी की डण्डी के सहारे जल पी लेता हूँ ।

इस प्रकार जब उसने जल पीना शुरू किया, तभी सरोवर के भीतर से सुन्दर रत्नमाला से सुशोभित एक राक्षस निकलकर उस बानर से बोला—अरे, बानर ! इस जल में जो भी प्रवेश करता है, वह मेरा आहार होता है । परन्तु तेरे जैसा धूर्त मैंने दूसरा कोई नहीं देखा, जो कि तुम इस विधि से पानी रहे हो । मैं तुम्हारी इस चतुरता पर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम मुझसे अपना इच्छित वर माँग लो ।

बानर ने पूछा—तुम्हारी खाने की शक्ति कितनी है ? राक्षस ने उत्तर दिया—मैं जल में प्रविष्ट एक सौ, हजार, दस हजार, लाख व्यक्तियों को भी खा सकता हूँ किन्तु जल से बाहर निकलने पर तो सियार भी मुझे अपमानित कर सकता है ।

बानर बोला—मेरी किसी राजा के साथ महती शत्रुता है यदि तुम मुझे रत्नमाला दो तो मैं उस राजा को सपरिवार अपनी बातों के कपट से लोभ में डालकर इस सरोवर में प्रवेश करा दूँगा ।

सोऽपि श्रद्धेयं वचस्तस्य श्रुत्वा रत्नमालां दत्त्वा प्राह—"भो मित्र! यत्समुचितं भवति तत्कर्त्तव्यम्" इति।

वानरोऽपि रत्नमालाविभूषितकण्ठो वृक्षप्रासादेषु परिभ्रमञ्जनैर्दृष्टः, पृष्टश्च—'भो यूथप! भवानियन्तं कालं कुत्र स्थितः? भवता ईदृग्रत्नमाला कुत्र लब्धा, दीप्त्या सूर्यमपि तिरस्करोति।'

वानरः प्राह—'अस्ति कुत्रचिदरण्ये गुप्ततरं महत्सरो धनदनिर्मितम्। तत्र सूर्येऽर्धोदिते रविवारे यः कश्चिन्निमज्जति, स धनदप्रसादादीदृग्रत्नमालाविभूषितकण्ठो निःसरति।"

अथ भूभुजा तदाकर्ण्य, स वानरः समाहूतः, पृष्टश्च—भो यूथाऽधिप! किं सत्यमेतत्, रत्नमालासनाथं सरोऽस्ति क्वाऽपि?

कपिराह—"स्वामिन्! एष प्रत्यक्षतया मत्कण्ठस्थितया रत्नमालया प्रत्ययस्ते। तद्यदि रत्नमालया प्रयोजनं तन्मया सह कमपि प्रेषय, येन दर्शयामि।'

तिरस्करोति, (प्रवञ्चयतीति), वाक्प्रपञ्चेन = वाक्छलेन, लोभयित्वा = प्रवंच्य, श्रद्धेयं = विश्वासयोग्यं, यत्समुचितं = यथुक्तं, तत्कर्तव्यम् = विधेयम्।

वानरोऽपि इति। रत्नमालाविभूषितकण्ठः = रत्नमालयाऽलंकृतकण्ठः, वृक्षप्रासादेषु = तरुषु भवनेषु च, परिभ्रमन् = सञ्चरन्, इयन्तं कालं=एतत्कालपर्यन्तं, दीप्त्या = कान्त्या, गुप्ततरम् = अतिगुप्तम्, धनदनिर्मितं = धनं ददातीति धनदः कुवेरः तेन निर्मितम्, सूर्येऽर्धोदिते = प्रभातसमये विम्बार्धे प्रकाशिते सति, निमज्जति = स्नाति, ईदृग्रत्नमालाविभूषितकण्ठः = ईदर्शीं रत्नमालां कण्ठे धृत्वा, निःसरति = सरोवरात् वहिरागच्छति, भूभुजा = राज्ञा, तदाकर्ण्य = तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा, रत्नमालासनाथं = रत्नमालायुक्तम्,

---

राक्षस ने वानर के विश्वास योग्य वचन को सुनकर उसे रत्नमाला दे दी और कहा—हे मित्र, तुम जैसा उचित समझो वैसा करो।

बानर भी उस रत्नमाला को कण्ठ में धारण करके वृक्षों और भवनों पर घूमता हुआ लोगों से देखा गया और लोगों ने पूछा—हे वानरराज, आप इतने समय तक कहाँ रहे! आपने ऐसी रत्नमाला कहाँ से पायी जो अपनी चमक से सूर्य का भी तिरस्कार करती है।

बानर ने कहा—वन में कुवेर द्वारा निर्मित एक बहुत बड़ा गुप्त सरोवर है, उसमें आधे सूर्य के निकलने पर प्रातःकाल रविवार के दिन जो स्नान करता है, वह कुवेर की कृपा से ऐसी रत्नमाला से विभूषित कण्ठ वाला होकर निकलता है।

जब राजा को यह ज्ञात हुआ तो उसने वानर को बुलाया और पूछा—हे वानरराज, क्या यह बात सच है? रत्नमालाओं से युक्त सरोवर कहीं है?

वानर बोला—इतना विश्वास तो मेरे गले में पड़ी हुई रत्नमाला से ही हो जाएगा और यदि आपको रत्नमाला से ही प्रयोजन है तो मेरे साथ किसी को भी भेज दीजिए उसे मैं वह सरोवर दिखा दूँगा।

तच्छ्रुत्वा नृपतिराह—यद्येवं, तदहं सपरिजनः स्वयमेष्यामि, येन प्रभूता रत्नमालाः उत्पद्यन्ते ।

वानर आह—एवं क्रियताम् ।

तथाऽनुष्ठिते, भूपतिना सह रत्नमालालोभेन सर्वे कलत्रभृत्याः प्रस्थिताः । वानरोऽपि राजा दोलाऽधिरूढेन स्वोत्सङ्गे आरोपितः सुखेन प्रीतिपूर्वमानीयते । अथवा साध्विदमुच्यते—

> तृष्णे ! देवि ! नमस्तुभ्यं यया वित्ताऽन्विता अपि ।
> अकृत्येषु नियोज्यन्ते, भ्राम्यन्ते दुर्गमेष्वपि ॥ ८१ ॥

तथा च—इच्छति शती सहस्रं, सहस्री लक्षमीहते ।

प्रत्ययः = विश्वासः, सपरिजनः = परिवारसहितः, सानुचरश्च, एष्यामि = गमिष्यामि, सम्पद्यन्ते = मिलिष्यन्ति । कलत्रभृत्याः = भार्यासेवकाः, दोलाधिरूढेन = प्रेङ्खाश्रितेन ।

अन्वयः—देवि तृष्णे ! तुभ्यं नमः यया वित्तान्विता अपि अकृत्येषु नियोज्यन्ते, दुर्गमेषु अपि भ्राम्यन्ते ॥ ८१ ॥

शती सहस्रम् इच्छति, सहस्री अक्षम् ईहते, लक्षाधिपः राज्यं तथा राज्यस्थः स्वर्गम् ईहते ॥ ८२ ॥

जीर्यतः केशाः जीर्यन्ते, जीर्यतः दन्ताः जीर्यन्ति, जीर्यतः चक्षुषी श्रोत्रे च (जीर्येते), (किन्तु) एका तृष्णा तरुणायते ॥ ८३ ॥

व्याख्या—हे तृष्णे देवि = तन्नामिके देवते ! तुभ्यं = ते, नमः = नमस्कारोऽस्तु, यथा त्वया, वित्तान्विता अपि = वित्तेन=धनेन युक्ता अपि, अकृत्येषु = अकरणीयकार्येषु, नियोज्यन्ते = प्रवर्त्यन्ते, दुर्गमेषु=अगम्येषु स्थानेषु, भ्राम्यन्ते = भ्रमणक्रियायां प्रवृत्ताः भवन्ति । तृष्णाऽभिभूता धनिनोऽपि कठिनं कार्यमाचरन्तीति भावः ॥ ८१ ॥

शती = शतसंख्यापरिमितं धनमस्यास्ति तादृशो जनः, सहस्रं = सहस्रसंख्यापरिमितं धनम्, इच्छतीति = अभिलषति, सहस्री = सहस्रसंख्याकधनवान् भवन्, लक्षं =

यह सुनकर राजा बोला—अगर ऐसी ही बात है तो मैं स्वयं ही पूरे परिवार के साथ चलता हूँ, जिससे हमें बहुत सी रत्नमालाएँ मिल जायेंगी ।

वानर ने कहा—ठीक है, ऐसा ही कीजिए ।

इस प्रकार करने पर राजा के साथ रत्नमाला की प्राप्ति के लोभ से उसके स्त्री, पुत्र, सेवक आदि सभी साथ चल दिये । राजा ने पालकी पर चढ़कर उस वानर को भी अपनी गोद में बिठा लिया और सुख से प्रसन्न होते हुए ले चले । अथवा ठीक ही कहा जाता है—

हे तृष्णा देवि, तुम को नमस्कार है, जिस तृष्णा के वश में होकर धनिक पुरुष भी अनुचित कार्यों में प्रवृत्त होते हैं और दुर्गम स्थानों में भटकते रहते हैं ॥ ८१ ॥

और भी—सौ का धनी हजार की इच्छा करता है, सहस्रपति लखपति होना चाहता

लक्षाऽधिपस्तथा राज्यं राज्यस्थः स्वर्गमीहते ॥ ८२ ॥
जीर्यन्ते जीर्यतः केशाः दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
जीर्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरुणायते ॥ ८३ ॥

अथ तत्सरः समासाद्य वानरः प्रत्यूषसमये राजानमुवाच-'देव ! अत्राऽर्धोदिते सूर्येऽन्तःप्रविष्टानां सिद्धिर्भवति तत्सर्वोऽपि जन एकदैवं प्रविशतु । त्वया पुनर्मया सह प्रवेष्टव्यं येन पूर्वदृष्टस्थानमासाद्य, प्रभूतास्ते रत्नमाला दर्शयामि ।'

अथ प्रविष्टास्ते लोकाः सर्वे भक्षिता राक्षसेन । अथ तेषु चिरयमाणेषु राजा वानरमाह—"भो यूथाधिप ! किमिति चिरायते मे परिजनः ?" तच्छ्रुत्वा वानरः सत्वरं वृक्षमारुह्य, राजानमुवाच—'भो दुष्टनरपते ! राक्षसेनान्तःसलिलस्थितेन भक्षितस्ते परिजनः । साधितं मया कुलक्षयजं वैरम्, तद् गम्यताम् । त्वं स्वामीति मत्वा नाऽत्र प्रवेशितः । उक्तं च—

लक्षसंख्यापरिमितं द्रव्यम्, ईहते = कामयते, लक्षाधिपः = लक्षसंख्याकधनस्य स्वामी, राज्यं = नृपत्वं, राज्यस्थः = राज्यसिंहासनाधिरूढः सन्, स्वर्गं = देवलोकम्, ईहते = कामयते । उत्तरोत्तरं तृष्णा वर्धत एवेति भावः ॥ ८२ ॥

जीर्यतः = जीर्यमाणस्य, केशाः = लोमानि, दन्ताः = रदाः, चक्षुषी = नेत्रे, श्रोत्रे = श्रोत्रेन्द्रिये, तृष्णा = स्पृहा, इच्छा, तरुणायते = नवीनतामाप्नोति ॥ ८३ ॥

अथेति । तत्सरः = राक्षसनिवासभूतं तडागम्, आसाद्य = प्राप्य, प्रत्यूषसमये = प्रातःसमये, अत्र = सरसि, अर्धोदिते = प्रातःकाले सूर्यस्य अर्धोदय सति, अन्तःमध्ये=जलाभ्यन्ते । प्रविष्टानां = गतानाम्, सिद्धिः = रत्नमालाप्राप्तिः, एकदैव = एकस्मिन्काले, अथ = कियत्कालानन्तरं, तेषु = राजपरिवारेषु, चिरायमाणेषु = विलम्बमानेषु, चिरायते=विलम्बं करोति, कुलक्षयजं=स्वकुलनाशोत्पन्नम्, स्वामीति मत्वा = कुलप्रभुः मम रक्षकश्चेति विचार्य ।

है और लखपति राज्य की कामना करता है तथा राज्य स्थित मनुष्य स्वर्ग भोगना चाहता है ॥८२॥

वृद्धावस्था में बाल पक जाते हैं, दाँत गिरने लगते हैं, आँखें कमजोर हो जाती हैं, कानों से सुनाई नहीं पड़ता—इस प्रकार सारी इन्द्रिय शिथिल हो जाती है परन्तु केवल एक तृष्णा ही सदा तरुण होती जाती है ॥ ८३ ॥

अनन्तर उस सरोवर पर पहुँच कर वानरराज ने प्रातःकाल राजा से कहा—हे देव, इस आधे सूर्य के उदय होने पर इसमें जो प्रवेश करता है, उसे सिद्धि प्राप्त होती है। इस लिए आप सभी लोग एक साथ ही इसमें प्रवेश करें और आप मेरे साथ प्रवेश करना जिससे मेरे पहले देखे हुए स्थान पर पहुँचकर बहुत सी रत्नमालाएँ दिखाऊँगा ।

इसके बाद जल में प्रविष्ट हुए उन लोगों को राक्षस ने खा लिया। जल के भीतर बहुत समय बीत जाने पर राजा ने वानर से पूछा—हे बानरराज, मेरे परिवार के लोगों

कृते प्रतिकृतं कुर्याद्धिंसिते प्रतिहिंसितम् ।
न तत्र दोषं पश्यामि यो दुष्टे दुष्टमाचरेत् ॥ ८४ ॥

तत्त्वया मम कुलक्षयः कृतः, मया पुनस्तव' इति ।

अथैतदाकर्ण्य, राजा कोपाविष्टः पदातिरेकाकी यथायातमार्गेण निष्क्रान्तः। अथ तस्मिन् भूपतौ गते राक्षसस्तृप्तो जलान्निष्क्रम्य सानन्दमिदमाह—

हतः शत्रुः, कृतं मित्रं रत्नमाला न हारिता ।
नालेनास्वादितं तोयं भवता साधु वानर ! ॥ ८५ ॥

अन्वयः—श्लोकानुसारं ज्ञातव्यः ॥ ८४ ॥

व्याख्या—कृते = केनापि पुरुषेण उपकारे वाऽपकारे विहिते सति, प्रतिकृतं = प्रतीकारं, यथोचितमुपकारमपकारं वा, कुर्यात् = विदध्यात्, हिंसिते = हिंसायां कृतायां, प्रतिहिंसितः = प्रतिवधः, दुष्टे = दुर्जने, दुष्टं = दोषयुक्तं कर्मेति यावत् दौर्जन्यमित्यर्थः, समाचरेत् = अनुतिष्ठेत्, तत्र = तस्मिन् कार्ये, दोषं न पश्यामि=न सम्भाव्य इत्यर्थः। ये यथा व्यवहरन्ति तेषु तथैव व्यवहर्तव्यमिति भावः ॥ ८४ ॥

तत्त्वया इति । त्वया = भूपतिना, कुलक्षयः = कुलविनाशः, मया = वानरेण, कोपाविष्टः=क्रोधाक्रान्तः, पदातिः = पादचारी, यथायातमार्गेण = येन यथा आगतः तेनैव मार्गेण, निष्क्रान्तः = ययौ, गते = प्रयाते, तृप्तः = सुतृप्तः, आह = अकथयत् ।

अन्वयः—वानर ! भवता, शत्रुः हतः, मित्रं कृतम्, रत्नमाला न हारिता, नालेन तोयं साधु आस्वादितम् ॥ ८५ ॥

व्याख्या—भवता = त्वया, शत्रुः = शत्रुभूतः, कुलनाशकारिणो राज्ञः परिवार इत्यर्थः, हतः = नाशितः, मित्रं कृतं = मत्सदृशः सखाप्राप्तः, रत्नमाला = मत्प्रसादेन च प्राप्ता

को इतनी देरी क्यों हो रही है? यह सुनकर वानर शीघ्र ही वृक्ष पर चढ़ गया और बोला—हे दुष्ट नरपते, इस जल के भीतर बैठे हुए राक्षस ने तुम्हारे परिवार को खा लिया। मैंने अपने कुल के नाश से हुए वैर का बदला ले लिया। अब जाओ। तुम स्वामी हो, ऐसा मानकर मैंने तुम्हें भीतर प्रवेश नहीं कराया। कहा भी है—

किसी के द्वारा उपकार या अपकार करने पर उसका भी उपकार या अपकार करें, हिंसा करने पर बदल में हिंसा करे तथा दुष्ट के प्रति दुष्ट आचरण ही करे। इसमें मैं कोई दोष नहीं मानता हूँ ॥ ८४ ॥

इसलिए तुमने मेरे कुल का नाश किया, फिर मैंने तुम्हारे। यह सुनकर राजा क्रोधाविष्ट होकर अकेला ही पैदल जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से वापस चला गया। राजा के चले जाने पर राक्षस तृप्त होकर जल से बाहर निकल कर प्रसन्न होता हुआ कहने लगा—

हे वानरराज, तुमने अपने शत्रु का नाश किया, मुझे अपना मित्र बनाया और

५

अतोऽहं ब्रवीमि—यो लौल्यात्कुरुते कर्म नैवोदर्कमवेक्षते।
विडम्बनामवाप्नोति स, यथा चन्द्रभूपतिः ॥ ८६ ॥ इति ॥

एवमुक्त्वा, भूयोऽपि स चक्रधरमाह—"भो मित्र ! प्रेषय मां, येन स्वगृहं गच्छामि।"

चक्रधर आह—"भद्र ! आपदर्थे धनमित्रसङ्ग्रहः क्रियते। तन्मामेवंविधं त्यक्त्वा क्व यास्यसि ? उक्तं च—

यस्त्यक्त्वा सापदं मित्रं याति निष्ठुरतां वहन्।
कृतघ्नस्तेन पापेन नरके यात्यसंशयम्" ॥ ८७ ॥

सुवर्णसिद्धिराह—भोः, सत्यमेतद्यदि गम्यस्थाने शक्तिर्भवति। एतत्पुनर्मनुष्याणामगम्यस्थानम्। नाऽस्ति कस्याऽपि त्वामुन्मोचयितुं शक्तिः। अपरं यथा-

---

मदीया रत्नमयी मालिका, न हारिता = न हस्तान्मोचिता, नालेन = कमलदण्डेन, साधुसम्यक्, तोयं = जलम्, आस्वादितं=पीतम् = प्रज्ञया कमलदण्डेन जलं पीत्वा सर्वं स्वकार्यं साधितवान्, भवान् मतिमान् अस्तीति भावः ॥ ८५ ॥

एवमिति। प्रेषय मां = गमनायानुमतिं प्रयच्छ, धनमित्रसङ्ग्रहः = धनानां मित्राणां च सञ्चयः, एवंविधं = चक्रपीडितम् माम्।

अन्वयः—यः सापदं मित्रं त्यक्त्वा निष्ठुरतां वहन् याति, (सः) कृतघ्नः तेन पापेन असंशयं नरके याति ॥ ८७ ॥

व्याख्या—यः = सुहृत्, सखा, सापदम् = आपदा सहितं विपद्ग्रस्तं मित्रं, त्यक्त्वा = परिहाय, निष्ठुरतां = निर्दयत्वं, वहन् = धारयन्, कृतघ्नः = तत्कृतं पूर्वोपकारं विस्मृतवान् (स पुरुषः) तेन पापेन = मित्रत्यागरूपेण पापेन, कृतघ्नतया वा, असंशयं = निःसन्देहं, नरके याति = अधो गच्छति ॥ ८७ ॥

सुवर्णसिद्धिरिति। गम्यस्थाने = गमनयोग्ये स्थाने, शक्तिः = मित्रस्य भयात् त्राणे शक्तिः, एतत् = इदं स्थानम, उन्मोचयितुं = कष्टान्निवारयितुम्, अपरं किं च।

रत्नमाला को भी जाने न दिया। वाह ! तुमने कमल-नाल से अच्छा जल पिया ॥ ८५ ॥

इसीलिए मैं कहता हूँ—जो लालच से कर्म करता है—इत्यादि।

ऐसा कहकर सुवर्णसिद्धि पुनः चक्रधर से बोला—हे मित्र, अब मुझे आज्ञा दो जिससे मैं अपने घर जाऊँ।

चक्रधर ने कहा—आपत्ति के लिए ही धन और मित्र का संग्रह किया जाता है तो तुम मुझे ऐसी अवस्था में छोड़कर कहाँ जाओगे ? कहा भी है—

जो पुरुष आपत्ति में पड़े हुए मित्र को छोड़कर निष्ठुर होकर चला जाता है। वह कृतघ्न मित्र उस पाप के कारण अवश्य ही नरक में गमन करता है ॥ ८७ ॥

सुवर्णसिद्धि ने कहा—हे मित्र, यह बात ठीक है। यदि गम्य स्थान हो तो शक्ति होती है (अर्थात् जिस स्थान में रहने की शक्ति होती है वहीं मित्र की सहायता हो सकती है)

यथा चक्रभ्रमवेदनया तव मुखविकारं पश्यामि तथा-तथाऽहमेतज्जानामि यत्-द्राग् गच्छामि, मा कश्चिन्ममाऽप्यनर्थो भवेदिति । यतः—

याहशी वदनच्छाया दृश्यते तव वानर ।
विकालेन गृहीतोऽसि, यः परैति स जीवति ॥ ८८ ॥

चक्रधर आह—कथमेतत् ? सोऽब्रवीत्—

१०. विकाल-वानर-कथा

"कस्मिंश्चिन्नगरे भद्रसेनो नाम राजा प्रतिवसति स्म । तस्य सर्वलक्षणसंपन्ना रत्नवती नाम कन्याऽस्ति । तां कश्चिद्राक्षसो जिहीर्षति । रात्रावागत्योपभुङ्क्ते,

---

चक्रभ्रमवेदनया = चक्रभ्रमणजन्यकष्टेन, मुखविकारं = वदनविकृतिं, जानामि = चिन्तयामि, द्राक् = त्वरितम्, अनर्थः = आपत्तिः, भवेदिति ।

अन्वयः—हे वानर ! यादृशी तव वदनच्छाया दृश्यते (तेन ज्ञायते) विकालेन गृहीतोऽसि, सः परैति स जीवति ॥ ८८ ॥

व्याख्या—हे वानर=हे मर्कट ! यादृशी = यथा, तव वदनच्छाया = ते मुखकान्तिः, दृश्यते = अनुभूयते, विकालेन = दुष्टकालेन, गृहीतः = आक्रान्तः, अतः यः = पुरुषः परैति = पलायते, सैव जीवति = जीवनं धारयिष्यति, तत्र पलायनमेव योग्यमिति ॥ ८८॥

कस्मिंश्चिद् इति । तस्य = भद्रसेनराजस्य, सर्वलक्षणसम्पन्ना = सकलशुभगुणोपेता, जिहीर्षति = हर्तुमिच्छति, आगत्य = राजभवने प्रविश्य, उपभुङ्क्ते = तया सह कामक्रीडां करोति, कृतरक्षोपधानां = मन्त्रादिभिः विहितरक्षाविधानां, तत्समये = राक्षस्यागमनकाले,

---

और फिर यह स्थान तो मनुष्यों के लिए सर्वथा अगम्य है । तुम्हें इस चक्र विपत्ति से मुक्त करने में किसी की भी शक्ति नहीं है । दूसरी बात यह है कि मैं जैसे-जैसे चक्र के घूमने की पीडा से तुम्हारा मुख विकार देखता हूँ, वैसे-वैसे मैं अनुभव करता हूँ कि शीघ्र ही चला जाऊँ । कहीं ऐसा न हो कि मेरा भी कुछ अनर्थ हो जाय । क्योंकि—

हे वानर ! जैसी तुम्हारी मुख की कान्ति दिखाई पड़ती है, इससे जान पड़ता है कि तुम विकाल (राक्षस अथवा विशेष विपत्ति) से आक्रान्त हो अतः जो यहाँ से दूर भागता है वही जीवित रहता है ॥ ८८ ॥

चक्रधर बोला—यह कैसे ?

सुवर्णसिद्धि ने कहा—

विकाल-वानर कथा

किसी नगर में भद्रसेन नामक राजा रहता था । उसकी सभी लक्षणों से युक्त रत्नवती नाम की एक कन्या थी । जिसको कोई राक्षस हरण करने की इच्छा करता था ।

परं कृतरक्षोपधानां तां हर्तुं न शक्नोति। साऽपि तत्समये रक्षःसांनिध्यजामवस्थामनुभवति कम्पादिभिः।

एवमतिक्रामति काले कदाचित् स राक्षसो मध्यनिशायां गृहकोणे स्थितः। साऽपि राजकन्या स्वस खीमुवाच—'सखि ! पश्यैष विकालः समये नित्यमेव मां कदर्थयति। अस्ति तस्य दुरात्मनः प्रतिषेधोपायः कश्चित् ?"

तच्छ्रुत्वा राक्षसोऽपि व्यचिन्तयत्—'नूनं यथाऽहं, तथाऽन्योऽपि कश्चिद्विकालनामाऽस्या हरणाय नित्यमेवागच्छति, परं सोऽप्येनां हर्तुं न शक्नोति। तत्तावदश्वरूपं कृत्वाश्वमध्यगतो निरीक्षयामि—किंरूपः सः किंप्रभावश्चेति ?" एवं एवं राक्षसोऽश्वरूपं कृत्वाऽश्वानां मध्ये तिष्ठति।

तथाऽनुष्ठिते निशीथसमये राजगृहे कश्चिदश्वचौरः प्रविष्टः। स च सर्वानश्वानवलोक्य, तं राक्षसमश्वतमं विज्ञायाऽधिरूढः।

रक्षःसान्निध्यजां = राक्षसावलोकनसम्भूताम् , कम्पादिभिः = गात्रप्रकम्पनादिभिः, अतिक्रामति = व्यतीते, मध्यनिशायां = मध्यरात्रौ, गृहकोणे = रत्नवत्याभवनैकदेशे, कदर्थयति= पीडयति, प्रतिषेधोपायः = निवारणोपायः, एनां = कन्यां, अश्वमध्यगतः = अश्वानां मध्ये स्थितः सन्, निरीक्षयामि = पश्यामि।

तथेति। तथाऽनुष्ठिते = तथाकृते सति, निशीथसमये = अर्धरात्रौ, अश्वतमं = श्रेष्ठमश्वं, विज्ञाय = अवगम्य, निहन्तुं = मारयितुं, सोऽपि = राक्षसः, तेन=चौरेण, खलीनं = कविकां

निशा को आकर वह उसके साथ कामक्रीड़ा करता था। किन्तु मन्त्र-यन्त्रादि द्वारा अभिरक्षित होने के कारण हरण नहीं कर सकता था। वह भी उस समय कंपन आदि से राक्षस के आगमन का अनुभव करती थी।

इसी तरह कुछ दिन व्यतीत होने पर एक दिन वह राक्षस अर्धरात्रि में घर के कोने में बैठ गया। इसी बीच उस राजकन्या ने अपनी सखी से कहा—"हे सखि ! देखो, यह विकाल नामका राक्षस नित्य रात्रि में मुझे कष्ट पहुँचाता है। इस दुरात्मा के निवारण का कोई उपाय है ?

यह सुनकर राक्षस ने भी विचार किया, कि—"निश्चय, जैसा मैं हूँ उसी तरह कोई दूसरा भी विकाल नामक राक्षस इसको हरने के लिए प्रतिदिन आया करता है, किन्तु वह भी इसको हर नहीं सकता। तो मैं अश्व का रूप धारणकर घोड़ों के बीच में बैठकर देखूं वह कितना सुन्दर तथा प्रभावशाली है ?" इस प्रकार अश्व का रूप धारणकर घोड़ों के बीच में खड़ा हो गया।

ऐसा करने पर अर्धरात्रि के समय राजभवन में कोई घोड़े का चोर घुसा और वह सब घोड़ों को देखकर राक्षसरूपी अश्व को श्रेष्ठतम समझकर उसी पर चढ़ गया। इसके बाद राक्षस सोचने लगा कि निश्चय ही विकालनामक यह राक्षस मुझे चोर समझकर मारने के

अत्राऽन्तरे राक्षसश्चिन्तयामास—नूनमेष विकालनामा मां चौरं मत्वा कोपान्निहन्तुमागतः । तत्किं करोमि ?" एवं चिन्तयन् सोऽपि तेन खलीनं मुखे निधाय, कशाघातेन ताडितः । अथाऽसौ भयत्रस्तमनाः प्रधावितुमारब्धः ।

चौरोऽपि दूरं गत्वा, खलीनाकर्षणेन तं स्थिरं कर्तुमारब्धवान् । स तु वेगाद्वेगतरं गच्छति । अथ तं तथागणितखलीनाकर्षणं मत्वा चौरश्चिन्तयामास—"अहो, नैवंविधा वाजिनो भवन्त्यगणितखलीनाः । तन्नूनमनेनाऽश्वरूपेण राक्षसेन भवितव्यम् । यद्यदि कञ्चित्पांसुलं भूमिदेशमवलोकयामि तदात्मानं तत्र पातयामि । नाऽन्यथा मे जीवितव्यमस्ति ।

एवं चिन्तयत इष्टदेवतां स्मरतस्तस्य सोऽश्वो वटवृक्षस्य तले निष्क्रान्तः । चौरोऽपि वटप्ररोहमासाद्य तत्रैव विलग्नः । ततो द्वावपि तौ पृथग्भूतौ परमानन्दभाजौ, जीवितविषये लब्धप्रत्याशौ सम्पन्नौ ।

('कविका तु खलीनोऽस्त्री' इत्यमरः ।) 'लगाम' इति भाषायाम् । निधाय = आरोप्य, कशाघातेन = 'चाबुक' इति प्रसिद्धस्य आघातेन=प्रहारेण । भयत्रस्तमनाः = भयातुरः, प्रधावितुं = धावितुमारब्धः, वेगाद्वेगतरम्=वेगादपि वेगतरं यथा स्यात् तथा, गच्छति = धावति, वाजिनः = अश्वाः, पांसुलम् = सिकतायुक्तम्, जीवितव्यं = जीवनम् ।

एवमेति । चिन्तयतः=चिन्तापथमधिरूढस्य, तस्य = चौरस्य, वटप्ररोहं = वटवृक्षस्य अधः लम्बमानां दीर्घजटाम् , आसाद्य = धृत्वा, तत्रैव = वटवृक्षे, विलग्नः = प्रलग्नोऽभूत्, पृथग्भूतौ = पृथक्सञ्जातौ, परमानन्दभाजौ=अतिहर्षितौ, जीवितविषये = स्वस्वजीवनरक्षाविषये, लब्धप्रत्याशौ = आशान्वितौ ।

लिए आया है तो क्या करूँ ? राक्षस भी इस प्रकार सोच रहा था कि उस चोर ने उसके मुख में लगाम रखकर चाबुक से ऐसा मारा कि राक्षस ने भय से व्याकुलचित्त होकर दौड़ना प्रारम्भ किया ।

कुछ दूर जाने के बाद चोर भी लगाम खींचकर उसको रोकने लगा । लगाम को खींचने पर वह राक्षस और भी वेग से भागने लगा । लगाम के अवरोध को न मानते हुए उसे देखकर चोर सोचने लगा—'अहो ! लगाम की परवाह न करनेवाले इस प्रकार घोड़े नहीं होते हैं । निश्चय ही यह घोड़े के रूप में राक्षस होना चाहिए । इसलिए यदि कहीं पर धूलवाली जमीन देखूं तो कूद पड़ूं ।

चोर मनमें अपने इष्ट देवता को स्मरण करता हुआ अभी अपने बचने का उपाय सोच ही रहा था कि वह अश्व एक वट-वृक्ष के नीचे से होकर गुजरा । चोर उसकी डाल पकड़कर उसी से लिपट गया । इस प्रकार दोनों ही एक दूसरे से अलग होकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें अपने जीवन के विषय में आशा प्राप्त हुई ।

अत्र तत्र वटे कश्चिद्राक्षससुहृद्वानरः स्थित आसीत्। तेन राक्षसं त्रस्तमालोक्य, व्याहृतं—भो मित्र! किमेवं पलाय्यतेऽलीकभयेन? त्वद्भक्ष्योऽयं मानुषः, भक्ष्यताम्।

सोऽपि वानरवचो निशम्य, स्वरूपमाधाय शङ्कितमनाः स्खलितगतिर्निवृत्तः। चौरोऽपि तं वानराहूतं ज्ञात्वा, कोपात्तस्य लाङ्गूलं लम्बमानं मुखे विधाय, चर्वितवान्।

वानरोऽपि तं राक्षसाऽभ्यधिकं मन्यमानो भयान्न किञ्चिदुक्तवान्। केवलं व्यथार्तो निमीलितनयनस्तिष्ठति। राक्षसोऽपि तं तथाभूतमवलोक्य श्लोकमेनमपठत्—यादृशी वदनच्छाया दृश्यते तव वानर!

विकालेन गृहीतोऽसि, यः परैति स जीवति ॥ ८९ ॥

इत्युक्त्वा प्रनष्टश्च।

'तत्प्रेषय मां, येन गृहं गच्छामि। त्वं पुनरनुभुङ्क्ष्वाऽत्र स्थित एव लोभवृक्षफलम्।'

त्रस्तमालोक्य = भयप्राप्तं विलोक्य, व्याहृतं = कथितं, अलीकभयेन = मिथ्याभयेन, भक्ष्यः = भक्षणयोग्यः, निशम्य=श्रुत्वा, स्वरूपमाधाय=स्वकीयं राक्षसरूपं गृहीत्वा, शङ्कितमनाः = किमयं चौरः, मनुष्यः, राक्षसो वा इति शंकमानः। वानराहूतं = वानरेणाकारितं, लांगुलं = पुच्छम्, चर्वितवान् = खादितवान्, राक्षसाभ्यधिकं = राक्षसादपि बलवत्तरं, ज्ञात्वा, व्यथार्तः = व्यथया दुःखितः सन्, तथाभूतं = दुखितं मौनं च, प्रनष्टः=पलायितः।

तत्प्रेषय इति। तत् = अनर्थसम्भावनात्, अनुभुङ्क्ष्व = क्लेशमनुभव। अकारणं = न तु लोभोत्पन्नम्, दैववशात् = भाग्यविपर्ययात्, सम्पद्यते = उत्पद्यते।

उस वट-वृक्ष पर राक्षस का मित्र एक वानर रहता था। भयभीत होकर भागते हुए राक्षस को देखकर उसने कहा—'हे मित्र! इस प्रकार झूठे डरसे क्यों भाग रहे हो? यह तो तुम्हारा भक्ष्य मनुष्य है। इसे पकड़कर खा जाओ।" वानर के वचन को सुन कर वह राक्षस अपना स्वरूप प्रकट करके भयग्रस्त सा धीरे-धीरे अपनी गति को रोकते हुए खड़ा हो गया। चोर भी उस राक्षस को वानर द्वारा बुलाया समझकर क्रोध के कारण उसकी लटकती हुई पूँछ को चबाने लगा। उस चोर को राक्षस से भी अधिक बलवान मानकर डर के मारे वानर ने कुछ कहा नहीं, केवल पीड़ित होकर आँख बन्द कर ली। राक्षस ने उसको इस प्रकार मौन देखकर इस श्लोक को पढ़ा—

हे बन्दर! जैसी तुम्हारे मुख की कान्ति दिखाई पड़ती है (इससे मालूम होता है कि) तुम विकाल से आक्रान्त हुए हो। इसलिए जो भागता है, वह जीता है॥ ८९ ॥
इस श्लोक को पढ़ने के बाद वह तत्काल वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

सुवर्णसिद्धि ने कहा—अब आज्ञा दो, जिससे मैं घर चला जाऊँ। तुम यहाँ रहकर लोभरूपी वृक्ष का फल चखो।

चक्रधर आह—"भोः अकारणमेतत् दैववशात्सम्पद्यते नृणां शुभाऽशुभम् । उक्तं च—

दुर्गस्त्रिकूटः, परिखा समुद्रो, रक्षांसि योधा धनदाच्च वित्तम् ।
शास्त्रं च यस्योशनसा प्रणीतं, स रावणो दैववशाद्विपन्नः ॥ ९० ॥

सुवर्णसिद्धिराह—'भोः ! सत्यमेतत् । दैवाऽनुकूलतया सर्वं कल्याणं सम्पद्यते । तथाऽपि पुरुषेण सतां वचनं कार्यम् । न पुनरेवमेव वर्तितव्यम् । अथ एवमेव यो वर्त्तते, स त्वमिव विनश्यति । तथा च—

एकोदराः पृथग्ग्रीवा अन्योन्यफलभक्षिणः ।
असंहता विनश्यन्ति, भारुण्डा इव पक्षिणः ॥" ९१ ॥

चक्रधर आह—"कथमेतत् ?" सोऽब्रवीत्—

अन्वयः—यस्य त्रिकूटः दुर्गः, समुद्रः परिखा, योधा रक्षांसि, धनदाच्च वित्तं उशनसा प्रणीतं शास्त्रं स रावणः दैववशात् विपन्नः ॥ ९० ॥

व्याख्या—त्रिकूटः = त्रीणि कूटानि शिखराणि यस्य तादृशः तन्नामधेयपर्वतः यस्य रावणस्य दुर्गः=परेषां दुर्गमं=सुगुप्तं स्थानमासीत् । परिखा = खेयं दुर्गस्य समन्तादवस्थापितो जलसमूह आसीत्, रक्षांसि =राक्षसाः, योधा = भटाः, आसन्, धनदात् = कुबेरात्, उशनसा = दैत्यगुरुणा शुक्राचार्येण, प्रणीतं = निर्मितम्, शास्त्रं = ज्ञानसम्पादकं नूतनचक्षुःस्वरूपं नीतिशास्त्रम्, दैववशात् = भाग्यवशात्, विपन्नः = नाशं गतः ॥ ९० ॥

अन्वयः—असंहताः एकोदराः, पृथग्ग्रीवा, अन्योन्यफलभक्षिणः भारुण्डाः पक्षिण इव विनश्यन्ति ॥ ९१ ॥

व्याख्या । असंहताः=अमिलिताः, पृथग्भूता इति यावत् । एकोदराः = एकमुदरं येषां ते=एककुक्षयः पृथग्ग्रीवाः = भिन्नकण्ठाः, अन्योन्यफलभक्षिणः = परस्परफलभक्षणशीला विनश्यन्ति = विनाशमनुभवन्ति ॥ ९१ ॥

चक्रधर ने कहा—मैं तुम्हारी इस बात से सहमत नहीं हूँ। भाग्य के कारण ही मनुष्य शुभ और अशुभ फल का उपभोग करता है । कहा भी गया है—

त्रिकूट पहाड़ जिसका किला था, समुद्र जिसकी खाई थी, राक्षस योद्धा, कुबेर से जिसको धनकी प्राप्ति थी, और शुक्राचार्य का रचा हुआ शास्त्र जिसका अपना था, वह रावण भी दैवयोग से विपत्ति में पड़ गया ॥ ९० ॥

सुवर्णसिद्धि बोला—अहो ! यह सच है । दैव के अनुकूल होने से सभी कार्य कल्याणदायक होते हैं । तो भी पुरुष को सज्जनों का वचन मानना चाहिए । इस तरह जो नहीं करता अर्थात् मित्र का वचन नहीं मानता, वह पुरुष तुम्हारे समान नष्ट होता है । और भी—जिनको पेट एक और गर्दन अलग-अलग है, तथा जो एक-दूसरे का दिया हुआ फल खाते हैं, वे लोग मेल न रखने से भारुण्ड पक्षी के समान नष्ट होते हैं ॥ ९१ ॥

चक्रधर बोला—'यह कैसे ? वह बोला—

११ भारुण्डपक्षि-कथा[1]

कस्मिंश्चित्सरोवरे भारुण्डनामा पक्षी एकोदरः, पृथग्ग्रीवः प्रतिवसति स्म। तेन च समुद्रतीरे परिभ्रमता किंचित्फलममृतकल्पं तरङ्गक्षिप्तं सम्प्राप्तम्। सोऽपि भक्षयन्निदमाह—"अहो, बहूनि मयाऽमृतप्रायाणि समुद्रकल्लोलाहृतानि फलानि भक्षितानि। परमपूर्वोऽस्यास्वादः। तत्किं पारिजातहरिचन्दनतरुसंभवम्? किं वा किंचिदमृतमयफलमयमव्यक्तेनाऽपि विधिनाऽपातितम्!"

एवं तस्य ब्रुवतो, द्वितीयमुखेनाऽभिहितत्—'भो, यद्येवं तन्ममाऽपि स्तोकं प्रयच्छ, येनाऽहमपि जिह्वासौख्यमनुभवामि।'

ततो विहस्य प्रथमवक्त्रेणाऽभिहितम्—'आवयोस्तावदेकमुदरम्, एका तृप्तिश्च भवति। ततः किं पृथग्भक्षितेन? वरमनेन शेषेण प्रिया तोष्यते।'

कस्मिंश्चिदेति। पृथग्ग्रीवः = द्विमुखः, अमृतकल्पम् = अमृततुल्यम्, तरङ्गाक्षिप्तं= वीचिप्रेरितं, समुद्रकल्लोलाहृतानि=सागरतरङ्गानीतानि, पारिजातहरिचन्दनतरुसंभवम् = देववृक्षोत्पन्नम्, [पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातिकः सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् इति अमरकोषे] अमृतमयफलं = सुधानिर्मितं फलं, अव्यक्तेन = अलक्षितेन, विधिना = दैवेन, पतितम् = आगतम्, स्तोकम् = अल्पम्, जिह्वासौख्यम् = आस्वाद-सुखम्, वरम् = योग्यम्, शेषेण = अवशिष्टभागेन, प्रिया = भार्या।

भारुण्डपक्षी कथा

किसी सरोवर में एक भारुण्ड नामक पक्षी रहता था। उसका एक उदर तथा दो सिर थे। एक दिन समुद्र के तट पर भ्रमण करते हुए उसे एक अमृततुल्य फल प्राप्त हुआ जो समुद्र की लहरों से तट पर आ गया था। उस फल को खाते हुए उसने कहा—मैंने समुद्र की लहरों से लाये गये अनेक फलों को खाया है परन्तु इसका स्वाद तो बहुत विलक्षण है। तो क्या यह पारिजात अथवा हरिचन्दन जैसे स्वर्ग वृक्ष का फल है अथवा अदृष्ट भाग्य ने कहीं से इस फल को ले आकर रख दिया है।

पहले मुख की इस बात को सुनकर दूसरे मुख ने कहा—अहो! अगर यह फल इतना ही सुस्वादु है, तो थोड़ा मुझे भी दे दो, जिससे मैं भी जिह्वा के सुख का अनुभव कर लूँ।

यह सुनकर पहले ने हँसकर कहा—हमारा एक ही तो पेट है और एक से ही तृप्ति हो जाती है तो फिर अलग-अलग खाने से क्या लाभ? इस लिए यह बचा हुआ फल भारुण्डी को दे दिया जाय जिससे वह भी सन्तुष्ट हो जाएगी।

---

१. इस कथा से पूर्व त्रिस्तनी राजकन्या की कथा भी मिलती है परन्तु अश्लीलांश-युक्त होने से परीक्षा में वर्जित है अतः उसे यहाँ छोड़ दिया गया है।

एवमभिधाय तेन शेषं भारुण्ड्याः प्रदत्तम् । साऽपि तदास्वाद्य प्रहृष्टतमा-लिङ्गनचुम्बनसंभावनाद्यनेकचाटुपरा च बभूव । द्वितीयं मुखं तद्दिनादेव प्रभृति सोद्वेगं सविषादं च तिष्ठति ।

अथाऽन्येद्युर्द्वितीयमुखेन विषफलं प्राप्तम् । तद् दृष्ट्वाऽपरमाह—"भो निस्त्रिंश ! पुरुषाधम ! निरपेक्ष ! मया विषफलमासादितम् । तत्तवाऽपमानाद्भक्षयामि ।"

अपरेणाऽभिहितम्—'मूर्ख ! मा मैवं कुरु । एवं कृते द्वयोरपि विनाशो भविष्यति' । अथैवं वदता तेनाऽपमानेन तत्फलं भक्षितम् । किं बहुना, द्वावपि विनष्टौ । अतोऽहं ब्रवीमि—

एकोदराः पृथक्ग्रीवा अन्योन्यफलभक्षिणः ।
असंहता विनश्यन्ति, भारुण्डा इव पक्षिणः ॥" ९२ ॥

चक्रधर आह—कथमेतत् ? सोऽब्रवीत्—

चक्रधर आह—"सत्यमेतत् । तद्गच्छ गृहम् । परमेकाकिना न गन्तव्यम् । उक्तं च—एकः स्वादु न भुञ्जीत, नैकः सुप्तेषु जागृयात् ।
एको न गच्छेदध्वानं, नैकश्चार्थान्प्रचिन्तयेत् ॥ ९३ ॥

एवमिति । भारुण्ड्याः = स्वपत्न्याः आलिङ्गनं = समाश्लेषः गात्रसंस्पर्शः, संभावनं = कटाक्षविक्षेपः, चाटुपरा = प्रशंसावचनपरायणा, सोद्वेगम् = सचिन्तम् , अन्येद्युः = अन्यस्मिन्दिने, निस्त्रिंशः = निष्ठुरः, द्वयोः = आवयोः, विनष्टौ = प्रनष्टौ ।

अन्वयः—श्लोकानुसारं ज्ञातव्यः ॥ ९३–९४ ॥

व्याख्या—एकः = एकाकी मनुष्यः, स्वादु=स्वादयुक्तं, न भुञ्जीत=नाश्नीयात, सुप्तेषु=

ऐसा कहकर उसने बचा हुआ फल भारुण्डी को दे दिया । वह भी उस फल के अपूर्व आस्वादन से प्रसन्न होकर आलिङ्गन, चुम्बन, कटाक्षादि के द्वारा पति की चापलूसी करने लगी । दूसरा मुख उसी दिन से उदास और खिन्न रहने लगा ।

अनन्तर दूसरे दिन दूसरे मुख को एक विषफल प्राप्त हुआ । उसे देखकर वह बोला—अरे, नृशंस, हे नराधम, हे दूसरों की परवाह न करने वाले ! आज मुझे विषफल मिला है । तेरे अपमान के कारण मैं इसे खा जाऊँगा । यह सुनकर प्रथम बोला—मूर्ख ऐसा मत करो । ऐसा करने से तो हम दोनों का ही नाश हो जाएगा । वह इस प्रकार कह रहा था कि उसने अपमान के कारण वह फल खा लिया । अधिक क्या कहें, ऐसा करने से वे दोनों ही नष्ट हो गये । इसीलिए मैं कहता हूँ—एक उदर और दो सिर ......इत्यादि ।

चक्रधर ने कहा—तुम ठीक कहते हो । तो तुम घर जाओ, परन्तु तुम्हें अकेले नहीं जाना चाहिए । कहा भी है—

स्वादिष्ट या मधुर वस्तु को अकेले ही न खावें । साथ के सब लोगों के सो जाने पर

अपि च—अपि कापुरुषो मार्गे द्वितीयः क्षेमकारकः ।
कर्कटेन द्वितीयेन जीवितं परिरक्षितम् ॥ ९४ ॥

सुवर्णसिद्धिराह—"कथमेतत् ?" सोऽब्रवीत्—

१२ ब्रह्मदत्तकर्कटक-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने ब्रह्मदत्तनामा ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म। स च प्रयोजनवशाद् ग्रामं प्रस्थितः स्वमात्राऽभिहितो, यद्—"वत्स ! कथमेकाकी व्रजसि ? तदन्विष्यतां कश्चिद् द्वितीयः सहायः।"

स आह—'अम्ब ! मा भैषीः। निरुपद्रवोऽयं मार्गः । कार्यवशादेकाकी गमिष्यामि ।'

अथ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा, समीपस्थवाप्याः सकाशात्कर्कटमादाय मात्राऽ-

---

निद्रितेषु, जागृयात् = जागरणं कुर्यात्, एकः = असहायः पुमान्, अध्वानं=मार्गं अर्थान् = विषयान्, प्रचिन्तयेत् = आलोचयेत् ॥ ९३ ॥

कापुरुषः = भीरु, भीतिपरायणः, मार्गे = पथि, द्वितीयः = स्वेतरः, क्षेमकारकः = हितकरः, कल्याणकारकः, द्वितीयेन = स्वस्मादितरेण, कर्कटेन = केनापि कुलीरकेण, ब्राह्मणस्येति शेषः, जीवितं परिरक्षितं = जीवनरक्षा, प्राणरक्षणं कृतम् ॥ ९४ ॥

कस्मिंश्चिदिति । प्रयोजनवशात् = कार्यवशात्, प्रस्थितः = गन्तुमुद्यतः, स्वमात्रा = निजजनन्या, अभिहितः = कथितः, द्वितीयः = अन्यसहायकः, मा भैषीः = भयं मा कुरु, निरुपद्रवः=निर्विघ्नः, तस्य=पुरुषस्य, निश्चयं=विचारम्, समीपस्थवाप्याः=निकटस्थितजलाशयस्य, सकाशात् = समीपात्, कर्कटं = कुलीरम् (केकड़ा), सहायः = सहचरः, गृहीत्वा=

एक व्यक्ति को नहीं जगना चाहिए। रास्ते में अकेले नहीं जाना चाहिए और किसी गम्भीर विषय पर अकेले सोचना नहीं चाहिए ॥ ९३ ॥

और भी—यदि मार्ग में कोई डरपोक आदमी भी हो तो भी उसे साथ लेकर जाने में ही कुशलता है क्योंकि साथ में रहने के कारण ही कर्कट के द्वारा ब्राह्मण की प्राण रक्षा हुई ॥ ९४ ॥

ब्रह्मदत्तकर्कटक कथा

किसी स्थान में ब्रह्मदत्त नाम का ब्राह्मण रहा करता था। जब एक दिन किसी कार्यवश गाँव जाने के लिए तैयार हुआ, तब उसकी माँ बोली—हे पुत्र, तुम अकेले क्यों जा रहे हो ? तुम किसी दूसरे साथी को ढूँढ लो।

वह बोला—माँ ! तुम मत डरो, यह मार्ग सर्वथा उपद्रव रहित है। कार्यवश मैं अकेले ही जाऊँगा। उसके इस निश्चय को जान कर, समीप की बावली से एक कर्कट को लाकर

भिहितं—"वत्स ! अवश्यं यदि गन्तव्यं, तदेष कर्कटोऽपि सहायो भवतु । तदेनं गृहीत्वा गच्छ ।"

सोऽपि मातुर्वचनादुभाभ्यां तं पाणिभ्यां संगृह्य कर्पूरपुटिकामध्ये निधाय, पात्रमध्ये संस्थाप्य शीघ्रं प्रस्थितः ।

अथ गच्छन्ग्रीष्मोष्मणा सन्तप्तः कश्चिन्मार्गस्थं वृक्षमासाद्य तत्रैव प्रसुप्तः । अत्रान्तरे वृक्षकोटरान्निर्गत्य सर्पस्तत्समीपमागतः । सोऽपि कर्पूरसुगन्ध-सहजप्रियत्वात्तं परित्यज्य वस्त्रं विदार्य अभ्यन्तरगतां कर्पूरपुटिकामतिलौल्यादभक्षयत् । सोऽपि कर्कटस्तत्रैव स्थितः सन् सर्पप्राणानपाऽहरत् । ब्राह्मणोऽपि यावत्प्रबुद्धः पश्यति, तावत्समीपे मृतः कृष्णसर्पो निजपार्श्वे कर्पूरपुटिकोपरि स्थितस्तिष्ठति । तं दृष्ट्वा व्यचिन्तयत्—"कर्कटेनाऽयं हतः" इति प्रसन्नो भूत्वाऽब्रवीच्च—"भोः! सत्यमभिहितं मम मात्रा यत्—'पुरुषेण कोऽपि सहायः कार्यः । नैकाकिना गन्तव्यम् ।' यतो

आदाय, पाणिभ्यां = हस्ताभ्याम् , तं = कुटीरम् , कर्पूरपुटिकामध्ये = कर्पूरसम्पुटे, पात्रमध्ये = अन्यस्मिन्पात्रे, निधाय=स्थापयित्वा, ग्रीष्मोष्मणा = ग्रीष्मऋतुसन्तापेन, आसाद्य-प्राप्य, वृक्षकोटरात्=तरुविवरात्, निर्गत्य = बहिरागत्य, तत्समीपम् = ब्राह्मणस्य समीपमित्यर्थः ।

स इति । सोऽपि—सर्पोपि कर्पूरसुगन्धसहजलोभात् , विदार्य = विदीर्णं कृत्वा, अभ्यन्तरगतां = पुटिकान्तरगतां, अतिलौल्यात् = जिह्वौत्कण्ठयात् , तत्रैव = पुटिकायाम् स्थितः = वर्तमानः, अपाहरत्=अहरत् जघान, प्रबुद्धः=जागृतः सन्ः, निजपार्श्वे=स्वसमीपे, व्यचिन्तयत् = चिन्तयामास, अयं = कृष्णसर्पः, श्रद्धापूरितचेतसा = श्रद्धापूर्णहृदयेन, तद्-

---

माता ने उससे कहा—यदि तुम्हारा जाना आवश्यक है, तो यह कर्कट ही तुम्हारा सहायक होगा, इसे ही लेकर जाओ ।

उसने भी माता के कहने से दोनों हाथों से लेकर उसे कपूर की थैली में रख लिया और उसे पात्र के भीतर रखकर चल दिया ।

वह मार्ग में जाते हुए ग्रीष्मऋतु की धूप से तपकर रास्ते में एक वृक्ष के नीचे सो गया । इसी बीच वृक्ष के कोटर से निकल कर एक सर्प उसके पास आ गया । वह भी कपूर की सुगन्ध से सहज प्रेम होने के कारण उस ब्राह्मण को छोड़कर वस्त्र को फाड़कर भीतर रखी हुयी कपूर की पोटली को बड़े चाव से खाने लगा । उसके मध्य रखे हुए उस कर्कट ने बाहर निकल कर सर्प को मार दिया ।

ब्राह्मण ने भी जागने पर देखा तो एक कालासर्प अपने निकट रखी कपूर की पोटली के ऊपर पड़ा हुआ था । उसे देखकर वह सोचने लगा—कर्कट ने ही यह सर्प मारा है । इस प्रकार प्रसन्न होकर मन ही मन कहने लगा—अहो, मेरी माँ ने सत्य ही कहा

मया श्रद्धापूरितचेतसा वद्वचनमनुष्ठितं तेनाऽहं कर्कटेन सर्पव्यापादनाद्रक्षितः।"
अथवा साध्विदमुच्यते—

'क्षीणः स्रवति शशी रविवृद्धौ वर्द्धयति पाथसां नाथम्।
अन्ये विपदि सहाया धनिनां, श्रियमनुभवन्त्यन्ये ॥ ९५ ॥

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ॥ ९६ ॥

एवमुक्त्वाऽसौ ब्राह्मणो यथाऽभिप्रेतं गतः।'

चनं = मातुः वचनम्, अनुष्ठितं = कृतम्, सर्पव्यापादनात् = व्यालदंशनात्, रक्षितः = मुक्तोऽभवत्।

अन्वयः—क्षीणः शशी स्रवति रविवृद्धौः, पाथसां नाथं वर्द्धयति। विपदि धनिनां सहाया अन्ये (भवन्ति) श्रियम् अन्ये अनुभवन्ति ॥ ९५ ॥

व्याख्याः—क्षीणः=कलाक्षयं प्राप्तः, शशी = चन्द्रमाः, स्रवति = अमृतं वर्षति, आनन्दयतीत्यर्थः, रविवृद्धौ = रवेः सकाशात्कलाभि वृद्धौ जातायां, पाथसां नाथं = समुद्रं, वर्धयति = वृद्धिं नयति। विपदि = आपत्तौ, धनिनां = श्रीयुक्तानां, अन्ये विरलाः पुरुषाः एव श्रियं = सम्पत्तिम्, अनुभवन्ति = उपभुञ्जते ॥ ९५ ॥

व्याख्या—मन्त्रे = मन्त्रसिद्धौ, तीर्थे = तीर्थयात्रायां स्नाने च, द्विजे = ब्राह्मणे, देवे= देवतायां, दैवज्ञे = ज्यौतिषिके, भेषजे = औषधे, यस्य यादृशी भावना = विश्वासः श्रद्धा वा भवति। तथैव सिद्धिर्भवति = साफल्यमपि जायते ॥ ९६ ॥

एवमेति—एवम् = पूर्वोक्तम्, उक्त्वा = पठित्वा, असौ = ब्रह्मदत्तः, यथाभिप्रेतं =

था कि पुरुष को कोई भी साथी बना लेना चाहिए, अकेले नहीं जाना चाहिए। मैंने श्रद्धापूर्वक माता के वचनों का पालन किया, इसी कारण मैं उस कर्कट के द्वारा सर्प दंश से बच गया। अथवा ठीक ही कहा जाता है—

अमावस्या का कलाहीन चन्द्रमा अमृत बरसाता है और पूर्णिमा के दिन सूर्य से वृद्धि प्राप्त करने पर समुद्र को बढ़ाता है (आनन्दित करता है) उसी प्रकार अपनी विपत्ति में सहायता करने वाले कुछ विरले ही होते हैं और दूसरे लोग ही धनिकों के धन का उपभोग करते हैं ॥ ९५ ॥

मन्त्र की साधना में, तीर्थ कार्य में, ब्राह्मणों में, देवपूजा में, ज्योतिषियों में तथा औषधि और गुरु में जैसी जिसकी भावना होती है, वैसी ही उसे सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ९६ ॥

अतोऽहं ब्रवीमि—

अपि कापुरुषो मार्गे द्वितीयः क्षेमकारकः ।
कर्कटेन द्वितीयेन जीवितं परिरक्षितम्' ॥ ॥ ९४ ॥ इति

एवं श्रुत्वा सुवर्णसिद्धिस्तमनुज्ञाप्य स्वगृहं प्रति निवृत्तः ।

इति श्रीविष्णुशर्मविरचिते पञ्चतन्त्रके अपरीक्षितकारकं नाम पञ्चमं तन्त्रं समाप्तम् ।

यथेच्छम्, स्वगृहं प्रति गतः = प्रस्थितः, एवं = ब्रह्मदत्तचरित्रं, तम् = भ्रमच्चक्रमस्तकं स्वमित्रम्, अनुज्ञाप्य = सम्बोध्य, स्वगृहं = निजभवनं, प्रतिनिवृत्तः = अनुप्रस्थितः ।

इत्यपरीक्षितकारके 'वीणा' संस्कृतव्याख्या समाप्ता ।

ऐसा कहकर वह ब्राह्मण अपने अभीष्ट स्थान को चला गया। इसीलिए मैं कहता हूँ—मार्ग में अत्यन्त कायर पुरुष भी साथ हो तो भी क्षेम कारक होता है—इत्यादि ।

चक्रधर की बात सुनकर सुवर्णसिद्धि उससे आज्ञा लेकर अपने घर की ओर लौट गया ।

पञ्चतन्त्र-अपरीक्षितकारक की 'वीणा' हिन्दी व्याख्या समाप्त ।



परीक्षोपयोगी ग्रन्थ—

१ नैषधचरितमहाकाव्यम् । महाकवि श्रीहर्ष प्रणीतम् । मल्लिनाथ कृत जीवातु सहितम् । डा० सुरेन्द्र देव शास्त्री कृत संस्कृत हिन्दी टीकादि युक्त प्रथम सर्ग । ६—००

२ कर्णभारम् । डा० सुधाकर मालवीय कृत "सरला" हिन्दी टीका आँग्लानुवाद, टिप्पणी, भूमिकादि सहित । ३—००

३. वैयाकरणसिद्धान्त कौमुदी । भट्टोजिदीक्षित विरचिता पाणिनीय व्याकरण सूत्रवृत्तिः । श्री कृष्णवल्लभाचार्य संशोधिता । १२—००

४ शिशुपालवधम् । आचार्य शेषराज शर्मा कृत "चन्द्रकला" व्याख्या, हिन्दी अनुवाद, टिप्पणी आदि युक्त चतुर्थ सर्ग । ३—००

५ संस्कृत प्रथम पाठ । मूल लेखक डा० जे० आर० वैलन्टाइन । भाषान्तरकार—डा० अमर नाथ पाण्डेय । ३—५०

६ कुमारसंभवम् । मल्लिनाथ विरचित "संजीवनी" तथा कन्हैया लाल जोशी कृत "बकुला" हिन्दी व्याख्यादि सहित । पञ्चम सर्ग । २—५०

७ निबन्ध चन्द्रिका । (संस्कृत निबन्धानां कमनीय संग्रहः) ले० डा० कृष्णदेव उपाध्याय । ५—००

८ छन्दःप्रवेशिका । 'प्रभा'-हिन्दीटीकोपेता । डा० देवशर्मा वेदालंकार सम्पादित । ०—६५

९ सांख्यकारिका । गौडपाद-भाष्य-भावार्थबोधिका हिन्दी भाषानुवाद सहित । श्री विमला कर्णाटक विरचित टिप्पणी आदि से युक्त । ८—००

१० तर्कसंग्रह । पदकृत्य-संस्कृत तथा हिन्दी टीका सहित तथा पाँच वर्ष के प्रश्न-पत्रों सहित । व्याख्याकार चन्द्रधरशुक्ल व्याकरणाचार्य । १—५०

११ सामान्य संस्कृत व्याकरण रचना तथा अनुवाद । लेखक डॉ० रामजी उपाध्याय तथा डॉ० मनोरमा तिवारी । ५—००

१२ हितोपदेश-मित्रलाभः । 'रश्मिकला'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्यासहितः । व्याख्याकार केशवदेव शास्त्री ४—५०